अध्याय 2

भारतीय समाज की जनसांख्यिकीय संरचना

जनसांख्यिकी (demography) जनसंख्या का सुव्यवस्थित अध्ययन है। (हिंदी में इसे 'जनांकिकी' भी कहा जाता है)। इसका अंग्रेज़ी पर्याय 'डेमोग्राफी' यूनानी भाषा के दो शब्दों 'डेमोस' (demos) यानी जन (लोग) और 'ग्राफीन' (graphien) यानी वर्णन से मिलकर बना है, जिसका तात्पर्य है – लोगों का वर्णन। जनसांख्यिकी विषय के अंतर्गत जनसंख्या से संबंधित अनेक रुझानों तथा प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है जैसे; जनसंख्या के आकार में परिवर्तन; जन्म, मृत्यु तथा प्रवसन के स्वरूप; और जनसंख्या की संरचना और गठन अर्थात् उसमें स्त्रियों, पुरुषों और विभिन्न आयु वर्ग के लोगों का क्या अनुपात है? जनसांख्यिकी कई प्रकार की होती है जैसे, आकारिक जनसांख्यिकी (formal demography) जिसमें अधिकतर जनसंख्या के आकार यानी मात्रा का अध्ययन किया जाता है और सामाजिक जनसांख्यिकी जिसमें जनसंख्या के सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक पक्षों पर विचार किया जाता है। सभी प्रकार के जनसांख्यिकीय अध्ययन गणना या गिनती की प्रक्रियाओं पर आधारित होते हैं, जैसे कि जनगणना या सर्वेक्षण, जिनके अंतर्गत एक निर्धारित प्रदेश के भीतर रहने वाले लोगों के बारे में सुव्यवस्थित रीति से आँकड़े एकत्र किए जाते हैं।

जनसांख्यिकी का अध्ययन समाजशास्त्र के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः समाजशास्त्र के उद्भव और एक अलग अकादमिक विषय के रूप में इसकी स्थापना का श्रेय बहुत कुछ जनसांख्यिकी को ही जाता है। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, यूरोप में दो विभिन्न प्रक्रियाएँ लगभग साथ-साथ घटित हुई, एक, राजनीतिक संगठन के प्रमुख रूप में राष्ट्र-राज्यों की स्थापना और दूसरी, आँकड़ों से संबंधित आधुनिक विज्ञान सांख्यिकी की शुरुआत। आगे चलकर इस आधुनिक किस्म के राज्य ने अपनी भूमिका और कार्यों का विस्तार करना शुरू कर दिया। उदाहरण के लिए, उसने जनस्वास्थ्य प्रबंध के प्रारंभिक रूपों के विकास में, आरक्षी (पुलिस) और कानून-व्यवस्था के अनुपालन में, कृषि तथा उद्योग संबंधी आर्थिक नीतियों में, कराधान और राजस्व उत्पादन में और नगरों की शासन व्यवस्था में सक्रिय रूप से दिलचस्पी लेना प्रारंभ कर दिया।

राज्य के कार्यकलापों के नए-नए और बराबर विस्तृत होते हुए क्षेत्र के सुचारु रूप से संचालन के लिए सामाजिक आँकड़ों को, यानी जनसंख्या और अर्थव्यवस्था के विभिन्न पक्षों से संबंधित मात्रात्मक तथ्यों को सुव्यवस्थित एवं नियमित रूप से इकट्ठा करने की आवश्यकता महसूस की गई। राज्य द्वारा सामाजिक आँकड़े इकट्ठे करने का प्रचलन हालाँकि काफ़ी पुराना है पर इसका आधुनिक रूप 18वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में अस्तित्व में आया। अमेरिका की 1790 की जनगणना संभवतः सबसे पहली आधुनिक किस्म की जनगणना थी और इस पद्धति को यूरोप में भी 19वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में अपना लिया गया। भारत में जनगणना का कार्य भारत की अंग्रेज़ी सरकार ने सर्वप्रथम 1867-72 के बीच प्रारंभ किया और फिर तो 1881 से हर दस साल बाद (दसवर्षीय) जनगणना की जाती रही। स्वतंत्र भारत ने भी इस पद्धति को चालू रखा और सन् 1951 से अब तक सात दसवर्षीय जनगणनाएँ हो चुकी हैं जिनमें 2011 में हुई जनगणना सबसे नयी है। भारतीय जनगणना विश्व भर में जनगणना किए जाने का सबसे बड़ा कार्य है (हालाँकि चीन की जनसंख्या भारत की तुलना में कुछ अधिक है पर वहाँ नियमित रूप से जनगणना नहीं की जाती)।

जनसांख्यिकीय आँकड़े, राज्य की नीतियाँ, विशेष रूप से आर्थिक विकास और सामान्य जन कल्याण संबंधी नीतियाँ बनाने और कार्यान्वित करने के लिए महत्त्वपूर्ण होते हैं। लेकिन जब सामाजिक आँकड़ों को

पहली बार इकट्ठा किया गया तो उन्होंने समाजशास्त्र जैसे एक नए विषय के अध्ययन के लिए एक प्रबल आधार प्रस्तुत कर दिया। लाखों लोगों के बहुत बड़े समुदाय के बारे में इकट्ठे किए गए विशाल आँकड़ों या संख्यात्मक विशेषताओं ने सामाजिक प्रघटना के अस्तित्व के लिए एक मजबूत एवं ठोस तर्क प्रस्तुत किया। यद्यपि देश-स्तरीय अथवा राज्य-स्तरीय आँकड़े, जैसे कि प्रति 1,000 की जनसंख्या के पीछे मृत्यु के मामलों की संख्या यानी मृत्यु दर, अलग-अलग व्यक्तियों की मृत्यु के आँकड़ों को जोड़कर तैयार किए जाते हैं, लेकिन मृत्यु दर अपने आप में एक सामाजिक प्रघटना है, और उसका स्पष्टीकरण सामाजिक स्तर पर ही किया जाना चाहिए। एमिल दुर्खाइम का प्रख्यात अध्ययन जिसमें उन्होंने विभिन्न देशों में आत्महत्या की दरों में पाए जाने वाले अंतरों को स्पष्ट किया है इस बात का एक अच्छा उदाहरण है। दुर्खाइम का कहना था कि आत्महत्या की दर (1,00,000 की जनसंख्या के पीछे आत्महत्या के मामलों की संख्या) को सामाजिक कारणों के द्वारा स्पष्ट करना ही ज़रूरी है। भले ही आत्महत्या के प्रत्येक मामले में आत्महत्या करने वाले प्रत्येक व्यक्ति की परिस्थितियाँ या कारण अलग-अलग हो सकते हैं।

कभी-कभी आकारिक जनसांख्यिकी और जनसंख्या अध्ययन के अधिक व्यापक क्षेत्रों के बीच अंतर किया जाता है। आकारिक जनसांख्यिकी प्रमुख रूप से जनसंख्या परिवर्तन के संघटकों के विश्लेषण तथा मापन से संबंध रखती है। इसके अंतर्गत मात्रात्मक विश्लेषण पर विशेष रूप से ध्यान केंद्रित किया जाता है जिसके लिए अत्यंत विकसित गणितीय विधि अपनाई जाती है। यह विधि जनसंख्या की वृद्धि और उसके गठन में होने वाले परिवर्तनों का पूर्वानुमान लगाने के लिए उपयुक्त होती है। दूसरी ओर, जनसंख्या अध्ययन या सामाजिक जनसांख्यिकी के अंतर्गत जनसंख्या की संरचनाओं और परिवर्तनों के व्यापक कारणों तथा परिणामों का पता लगाया जाता है। सामाजिक जनसांख्यिकीविदों का विश्वास है कि सामाजिक प्रक्रियाएँ और संरचनाएँ जनसांख्यिकीय प्रक्रियाओं को नियमित करती हैं। समाजशास्त्रियों के समान वे उन सामाजिक कारणों का पता लगाने का प्रयत्न करते हैं जो जनसंख्या के रुझानों को निर्धारित करते हैं।

2.1 जनसांख्यिकी संबंधी कुछ सिद्धांत एवं संकल्पनाएँ

माल्थस का जनसंख्या वृद्धि का सिद्धांत

जनसांख्यिकी के सर्वाधिक प्रसिद्ध सिद्धांतों में एक सिद्धांत अंग्रेज़ राजनीतिक अर्थशास्त्री थॉमस रोबर्ट माल्थस (1766-1834) के नाम से जुड़ा है। माल्थस का जनसंख्या वृद्धि का सिद्धांत, जो उनके जनसंख्या विषयक निबंध 'ऐस्से ऑन पॉपुलेशन' Essay on Population (1788) में स्पष्ट किया गया है जो एक तरह से निराशावादी सिद्धांत था। उनका कहना था कि मनुष्यों की जनसंख्या उस दर की तुलना में अधिक तेज़ी से बढ़ती है जिस दर पर मनुष्य के भरण-पोषण के साधन (विशेष रूप से भोजन, लेकिन कपड़ा और अन्य कृषि आधारित उत्पाद भी) बढ़ सकते हैं। इसलिए मनुष्य सदा ही गरीबी की हालत में जीने के लिए दंडित किया गया है क्योंकि कृषि उत्पादन की वृद्धि हमेशा ही जनसंख्या की वृद्धि से पीछे रहेगी। जहाँ जनसंख्या का विस्तार ज्यामितीय या गुणोत्तर रूप से (जैसे 2, 4, 8, 16, 32 आदि की शृंखला में) होता है वहीं कृषि उत्पादन में वृद्धि गणितीय या समांतर रूप से (जैसे 2, 4, 6, 8, 10 आदि की तरह) होती है। चूँकि जनसंख्या की वृद्धि की दर भरण-पोषण के संसाधनों के उत्पादन में होने वाली वृद्धि की दर से सदा आगे रहती है, इसीलिए समृद्धि को बढ़ाने का एक ही तरीका है कि जनसंख्या की वृद्धि को नियंत्रित किया जाए। दुर्भाग्यवश, मनुष्यों में अपनी जनसंख्या को स्वेच्छापूर्वक घटाने की एक सीमित क्षमता ही होती है (कृत्रिम निरोधों

बॉक्स 2.1

"जनसंख्या की शक्ति पृथ्वी द्वारा मनुष्य के भरण-पोषण के लिए उत्पादन करने की उसकी शक्ति से इतनी अधिक होती है कि मानव प्रजाति को किसी-न-किसी रूप में असामयिक मृत्यु का सामना करना ही होगा। मनुष्यों के दुर्गुण ही जनसंख्या को घटाने के सक्रिय और सक्षम कारक होते हैं। वे विनाश की विशाल सेना में अग्रणी होते हैं और अकसर यह भयंकर कार्य स्वयं ही संपन्न कर देते हैं। लेकिन यदि वे अपने इस विनाशकारी संग्राम में असफल हो जाते हैं तो फिर बीमारियाँ, महामारियाँ, घातक रोग और प्लेग आदि भयंकर रूप में उनका स्थान ले लेते हैं और हजारों-लाखों लोगों का सफाया कर देते हैं। फिर भी यदि उन्हें अपनी विनाशलीला में पूरी सफलता नहीं मिलती तो व्यापक विनाशकारी अकाल उनकी सहायता के लिए आ धमकता है और अपने घातक वज्रपात से चोट पहुँचाकर बस उतने ही लोगों को जिंदा छोड़ता है जिनके लिए दुनिया में खाद्य सामग्री पर्याप्त मात्रा में होती है।"

थॉमस रोबर्ट माल्थस, ऐन एस्से ऑन द प्रिंसिपल ऑफ़ पॉपुलेशन, 1798

थॉमस रोबर्ट माल्थस
(1766-1834)

माल्थस ने कैंब्रिज में शिक्षा प्राप्त की थी और ईसाई पादरी बनने का प्रशिक्षण लिया था। बाद में उन्हें लंदन के पास हैलीबरी में स्थित ईस्ट इंडिया कंपनी कॉलेज में इतिहास और राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रोफेसर के रूप में नियुक्त किया गया था। ईस्ट इंडिया कंपनी का यह कॉलेज उस समय की प्रशासनिक भारतीय सेवा (इंडियन सिविल सर्विस) के भावी अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण केन्द्र था।

(Preventive Checks) द्वारा जैसे कि बड़ी उम्र में विवाह करके या यौन संयम रखकर अथवा ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए सीमित संख्या में बच्चे पैदा किए जाएँ)। माल्थस का विश्वास था कि अकालों और बीमारियों के रूप में जनसंख्या वृद्धि को रोकने के प्राकृतिक निरोध (Positive Checks) अनिवार्य होते हैं क्योंकि वे ही खाद्य आपूर्ति और बढ़ती हुई जनसंख्या के बीच असंतुलन को रोकने के प्राकृतिक उपाय हैं।

माल्थस का यह सिद्धांत एक लंबे समय तक प्रभावशाली रहा। लेकिन कुछ विचारकों ने इसका विरोध भी किया, जो यह मानते थे कि आर्थिक संवृद्धि जनसंख्या वृद्धि से अधिक हो सकती है। तथापि, उनके सिद्धांत का सबसे प्रभावकारी खंडन यूरोपीय देशों के ऐतिहासिक अनुभव द्वारा प्रस्तुत किया गया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जनसंख्या वृद्धि का स्वरूप बदलने लगा और बीसवीं शताब्दी के पहले चतुर्थांश के अंत तक यह परिवर्तन नाटकीय ढंग से हुआ। जन्म दरें घट गईं और महामारियों के प्रकोप पर नियंत्रण किया जाने लगा। माल्थस की भविष्यवाणियाँ झूठी साबित कर दी गईं क्योंकि जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के बावजूद, खाद्य उत्पादन और जीवन स्तर लगातार उन्नत होते गए।

उदारवादी और मार्क्सवादी विद्वानों ने भी माल्थस के इस विचार की आलोचना की कि गरीबी का कारण जनसंख्या वृद्धि है। आलोचकों का कहना था कि गरीबी और भुखमरी जैसी समस्याएँ जनसंख्या वृद्धि की बजाय आर्थिक संसाधनों के असमान वितरण के कारण होती हैं। एक अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के कारण ही कुछ थोड़े-से धनवान और विशेषाधिकार संपन्न लोग विलासमय जीवन का आनंद लेते हैं और बहुसंख्यक लोगों को गरीबी की हालत में जीना पड़ता है।

क्रियाकलाप 2.1

पिछले पृष्ठ पर दिए गए अनुभाग और बॉक्स 2.1 में माल्थस के उद्धरण को पढ़िए। माल्थस के गलत साबित होने का एक कारण यह था कि **कृषि की उत्पादकता** में बहुत अधिक वृद्धि हो गई। वे कौन-से कारक थे जिनकी वजह से उत्पादकता बढ़ गई? क्या आप इन कारकों का पता लगा सकते हैं? माल्थस के गलत साबित होने के कुछ अन्य कारण क्या हो सकते हैं? इस विषय पर अपने सहपाठियों से चर्चा करें और अपने अध्यापक की सहायता से इन कारकों की सूची बनाएँ।

जनसांख्यिकीय संक्रमण का सिद्धांत

जनसांख्यिकीय विषय में एक अन्य उल्लेखनीय सिद्धांत है: जनसांख्यिकीय संक्रमण का सिद्धांत। इसका तात्पर्य यह है कि जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास के समग्र स्तरों से जुड़ी होती है एवं प्रत्येक समाज विकास से संबंधित जनसंख्या वृद्धि के एक निश्चित स्वरूप का अनुसरण करता है। जनसंख्या वृद्धि के तीन बुनियादी चरण होते हैं। पहला चरण है समाज में जनसंख्या वृद्धि का कम होना क्योंकि समाज अल्पविकसित और तकनीकी दृष्टि से पिछड़ा होता है। वृद्धि दरें इसलिए कम होती हैं क्योंकि मृत्यु दर और जन्म दर दोनों ही बहुत ऊँची होती हैं इसलिए दोनों के बीच का अंतर (यानी शुद्ध वृद्धि दर) नीचा रहता है। तीसरे (और अंतिम) चरण में भी विकसित समाज में जनसंख्या वृद्धि दर नीची रहती है क्योंकि ऐसे समाज में मृत्यु दर और जन्म दर दोनों ही काफ़ी कम हो जाती हैं और उनके बीच अंतर बहुत कम रहता है। इन दोनों अवस्थाओं के बीच एक तीसरा संक्रमणकालीन चरण होता है जब समाज पिछड़ी अवस्था से उन्नत अवस्था में जाता है और इस अवस्था की विशेषता यह है कि इस दौरान जनसंख्या वृद्धि की दरें बहुत ऊँची हो जाती हैं।

यह 'जनसंख्या विस्फोट' इसलिए होता है क्योंकि मृत्यु दर, रोग नियंत्रण, जनस्वास्थ्य और बेहतर पोषण के उन्नत तरीकों के द्वारा अपेक्षाकृत तेज़ी से नीचे ला दी जाती है। लेकिन समाज को इस आपेक्षिक समृद्धि की स्थिति और पहले से अधिक लंबी जीवन अवधियों के अनुरूप अपने आपको ढालने और अपने प्रजननात्मक व्यवहार को (जो उसकी गरीबी और ऊँची मृत्यु दरों की हालत में विकसित हो गया था) बदलने में काफ़ी लंबा समय लगता है। इस प्रकार का संक्रमण पश्चिमी यूरोप में 19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों और 20वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में हुआ था। अपेक्षाकृत कम विकसित देशों में भी, जो गिरती हुई मृत्यु दरों के अनुसार अपने यहाँ जन्म दर घटाने के लिए संघर्षशील रहे हैं कमोबेश ऐसे ही तरीके अपनाए गए हैं। भारत में भी जनसांख्यिकीय संक्रमण अभी तक पूरा नहीं हुआ है क्योंकि यहाँ मृत्यु दर कम कर दी गई है पर जन्म दर उसी अनुपात में नहीं घटाई जा सकी है।

सामान्य संकल्पनाएँ एवं संकेतक

अधिकांश जनसांख्यिकीय संकल्पनाओं को दरों या अनुपातों के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है, उनमें दो संख्याएँ शामिल होती हैं। इन संख्याओं में से एक खास आँकड़ा होता है जिसकी गणना एक विशिष्ट भौगोलिक-प्रशासनिक इकाई के लिए की जाती है; और दूसरी संख्या तुलना के लिए मानक का काम देती है। उदाहरण के लिए, जन्म दर दर्शाने के लिए किसी एक विशेष क्षेत्र में (जो एक पूरा देश, एक राज्य, एक जिला अथवा अन्य कोई प्रादेशिक इकाई हो सकता है), एक निर्धारित अवधि के दौरान (जो आमतौर पर एक वर्ष की होती है) हुए जीवंत-जन्मों यानी जीवित उत्पन्न हुए बच्चों की कुल संख्या को उस क्षेत्र में हज़ार की इकाइयों में अभिव्यक्त कुल जनसंख्या से भाग दिया जाता है। दूसरे शब्दों में, जन्म दर प्रति एक हज़ार की जनसंख्या के पीछे जीवित उत्पन्न हुए बच्चों की संख्या होती है। इसी प्रकार मृत्यु दर भी एक ऐसा ही आँकड़ा है जो किसी एक क्षेत्र-विशेष में एक निर्धारित अवधि के दौरान हुई मृत्यु की संख्या के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है। ये आँकड़े संबंधित परिवारों द्वारा उनके यहाँ हुए जन्म या मृत्यु के

मामलों की सूचना दिए जाने पर निर्भर करते हैं। वस्तुत: अधिकांश देशों में, जिनमें भारत भी एक है, लोगों को उनके यहाँ हुए जन्म या मृत्यु के बारे में कानूनन उपयुक्त प्राधिकरण को सूचना देनी होती है। यह उपयुक्त प्राधिकरण गाँवों के मामलों में पुलिस थाना या प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र होता है और कस्बों तथा शहरों के मामले में वहाँ का संबंधित नगरपालिका का कार्यालय।

प्राकृतिक वृद्धि दर या जनसंख्या संवृद्धि दर का तात्पर्य है जन्म दर और मृत्यु दर के बीच का अंतर। जब यह अंतर शून्य (अथवा व्यावहारिक रूप से बहुत कम, नगण्य) होता है तब हम यह कह सकते हैं कि जनसंख्या 'स्थिर' हो गई है या वह 'प्रतिस्थापन स्तर' पर पहुँच गई है। यह एक ऐसी अवस्था होती है जब जितने बूढ़े लोग मरते हैं उनका खाली स्थान भरने के लिए उतने ही नए बच्चे पैदा हो जाते हैं। कभी-कभी कुछ समाजों को ऋणात्मक संवृद्धि दर की स्थिति से भी गुजरना होता है; अर्थात् उनका प्रजनन शक्ति स्तर प्रतिस्थापन दर से नीचा रहता है। आज विश्व में कई ऐसे देश और क्षेत्र हैं जहाँ ऐसी स्थिति है जैसे, जापान, रूस, इटली एवं पूर्वी यूरोप। दूसरी ओर, कुछ समाजों में जनसंख्या संवृद्धि दर बहुत ऊँची हो जाती है विशेष रूप से उस स्थिति में, जब वे ऊपर वर्णित जनसांख्यिकीय संक्रमण से गुजर रहे होते हैं।

क्रियाकलाप 2.2

यह जानने का प्रयास करें कि जन्मदर मृत्युदर की तुलना में कम क्यों है? कुछ ऐसे कारण हो सकते हैं जो परिवार या दंपति के इस निर्णय को प्रभावित कर सकते हैं कि वे कितने बच्चे पैदा करें? अपने परिवार या पास-पड़ौस के बुजुर्गों से उन संभावित कारणों के बारे में पता कीजिए कि पुराने जमाने में लोग ज्यादा बच्चे क्यों चाहते थे?

प्रजनन दर का अर्थ है बच्चे पैदा कर सकने की आयु (जो आमतौर पर 15 से 49 वर्ष की मानी जाती है) वाली प्रति 1000 स्त्रियों की इकाई के पीछे जीवित जन्में बच्चों की संख्या। लेकिन ऊपर चर्चित अन्य दरों (जन्म तथा मृत्यु दरों) की तरह यह दर भी अशोधित दर ही होती है यानी कि यह संपूर्ण जनसंख्या के लिए मोटे तौर पर एक स्थूल औसत दर होती है और इसमें विभिन्न आयु वर्गों में पाए जाने वाले अंतरों का कोई ध्यान नहीं रखा जाता। विभिन्न आयु वर्गों के बीच पाया जाने वाला अंतर कभी-कभी संकेतकों के अर्थ को प्रभावित करने में बहुत महत्त्वपूर्ण हो सकता है। इसीलिए जनसांख्यिकीविद् भी आयु विशेष की दरों का हिसाब लगाते हैं। सकल प्रजनन दर से तात्पर्य है ऐसे जीवित जन्म लेने वाले बच्चों की कुल संख्या जिन्हें कोई एक स्त्री जन्म देती यदि वह बच्चे पैदा करने के आयु वर्ग में पूर्णत: जीवित रहती और इस आयु वर्ग के प्रत्येक हिस्से में औसत उतने ही बच्चें पैदा करती जितने कि उस क्षेत्र में आयु विशेष की प्रजनन दरों के अनुसार होने चाहिए। इस बात को कहने का एक दूसरा तरीका यह है कि सकल प्रजनन दर 'स्त्रियों के एक विशेष वर्ग द्वारा उनकी प्रजनन आयु की अवधि के अंत तक पैदा किए गए बच्चों की औसत संख्या के बराबर होती है (प्रजनन आयु की अवधि का अनुमान एक निश्चित अवधि में पाई गई आयु विशेष की दरों के आधार पर लगाया जाता है)' (विसारिया और विसारिया 2003)।

शिशु मृत्यु दर उन बच्चों की मृत्यु की संख्या दर्शाती है जो जीवित पैदा हुए 1000 बच्चों में से एक वर्ष की आयु प्राप्त होने से पहले ही मौत के मुँह में चले जाते हैं। इसी प्रकार, मातृ-मृत्यु दर उन स्त्रियों की संख्या की सूचक है जो जीवित प्रसूति के 1000 मामलों में अपने बच्चे को जन्म देते समय मृत्यु को प्राप्त हो जाती हैं। शिशु और मातृ-मृत्यु की ऊँची दरें निसंदेह पिछड़ेपन और गरीबी की सूचक होती हैं। जब समाज विकास के पथ पर अग्रसर होता है तो ये दरें तेजी से घटने लगती हैं क्योंकि तब चिकित्सा सुविधाओं और शिक्षा, जागरूकता तथा समृद्धि के स्तरों में वृद्धि होती जाती है। एक अन्य संकल्पना जो कुछ भ्रामक है वह है आयु संभाविता। यह इस बात की सूचक है कि एक औसत व्यक्ति अनुमानत: कितने

वर्षों तक जीवित रहेगा। इसकी गणना किसी क्षेत्र–विशेष में एक निश्चित अवधि के दौरान एक आयु विशेष में मृत्यु दर संबंधी आँकड़ों के आधार पर की जाती है।

स्त्री–पुरुष अनुपात यह बताता है कि किसी क्षेत्र–विशेष में एक निश्चित अवधि के दौरान प्रति 1000 पुरुषों के पीछे स्त्रियों की संख्या क्या है। ऐतिहासिक तौर पर, संपूर्ण विश्व में यह पाया गया है कि अधिकांश देशों में स्त्रियों की संख्या पुरुषों की अपेक्षा थोड़ी अधिक होती है। इस तथ्य के बावजूद कि कुदरती तौर पर मादा बच्चों की तुलना में नर बच्चे कुछ ज्यादा पैदा होते हैं यानी प्रकृति हर 1000 नर बच्चों के पीछे मोटे तौर पर 943 से 952 तक मादा बच्चे पैदा करती हैं। इस तथ्य के बावजूद, यदि स्त्री–पुरुष अनुपात थोड़ा स्त्रियों के पक्ष में है तो फिर इसके दो कारण हो सकते हैं। पहला, यह कि शैशवावस्था में बालिका शिशुओं में बालक शिशुओं की अपेक्षा रोग के प्रतिरोध की क्षमता अधिक होती है। जीवन चक्र के दूसरे सिरे पर, अधिकांश समाजों में स्त्रियाँ पुरुषों की तुलना में अधिक वर्षों तक जीवित रहती हैं इसीलिए बूढ़ी स्त्रियों की संख्या बूढ़े पुरुषों से अधिक है। इन दोनों कारणों ने मिलकर स्त्री–पुरुष अनुपात को प्रभावित किया है जिससे अधिकांश संदर्भों में प्रति 1000 पुरुषों के पीछे स्त्रियों की संख्या मोटे तौर पर 1050 के आसपास होती है। तथापि, यह देखने में आया है कि चीन, दक्षिण कोरिया और विशेषतः भारत जैसे कुछ देशों में स्त्री–पुरुष अनुपात घटता जा रहा है। इस प्रघटना को वर्तमान सामाजिक मानकों से जोड़ा जा सकता है जिनके अनुसार पुरुषों को स्त्रियों की तुलना में कहीं अधिक महत्त्व दिया जाता है और इसी के परिणामस्वरूप 'बेटे को अधिमान्यता' (अधिक पसंद) दी जाती है और बालिका शिशुओं की उपेक्षा की जाती है।

जनसंख्या की आयु संरचना से तात्पर्य है कि कुल जनसंख्या के विभिन्न आयु वर्गों में व्यक्तियों का अनुपात क्या है। आयु संरचना विकास के स्तरों और औसत आयु संभाविता के स्तरों में होने वाले परिवर्तनों के अनुसार बदलती रहती है। प्रारंभ में निम्न स्तर की चिकित्सा सुविधाओं, रोगों के प्रकोप और अन्य कई कारणों से जीवन अवधि अपेक्षाकृत कम थी। इसके अलावा, शिशुओं तथा प्रसूताओं की मृत्यु की ऊँची दरें भी आयु संरचना को प्रभावित करती हैं। विकास के साथ–साथ जीवन स्तर में सुधार होता जाता है और उसके कारण आयु की संभाविता भी बढ़ जाती है। इसके फलस्वरूप आयु संरचना में परिवर्तन आता है। छोटी आयु के वर्गों में जनसंख्या के अपेक्षाकृत छोटे हिस्से और बड़ी आयु के वर्गों में बड़े हिस्से पाए जाते हैं। इस स्थिति को जनसंख्या का बूढ़ा होना भी कहा जाता है।

पराश्रितता अनुपात जनसंख्या के पराश्रित और कार्यशील हिस्सों को मापने का साधन है। (पराश्रित वर्ग में ऐसे बुजुर्ग लोग आते हैं जो अपने बुढ़ापे के कारण काम नहीं कर सकते और ऐसे बच्चे भी आते हैं जो इतने छोटे हैं कि काम नहीं कर सकते)। कार्यशील वर्ग में आमतौर पर 15 से 64 वर्ष की आयु के लोग होते हैं। पराश्रितता अनुपात 15 वर्ष से कम और 64 वर्ष से अधिक आयु वर्ग के लोगों की संख्या को 15 से 64 वर्ष के आयु वर्ग के लोगों की संख्या से भाग देने के बाद प्राप्त हुई संख्या के बराबर होता है। यह अनुपात आमतौर पर प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है। बढ़ता हुआ पराश्रितता अनुपात उन देशों में चिंता का कारण बन जाता है जहाँ जनता बुढ़ापे की समस्या से जूझ रही होती है क्योंकि वहाँ आश्रितों की संख्या बढ़ जाने से कार्यशील आयु वाले लोगों का अनुपात अपेक्षाकृत छोटा हो जाता है जो आश्रितों का बोझ ढोने में कठिनाई महसूस करता है। दूसरी ओर, गिरता हुआ पराश्रितता अनुपात आर्थिक संवृद्धि और समृद्धि का स्रोत बन सकता है क्योंकि वहाँ कार्यशील लोगों का अनुपात काम न करने वालों की तुलना में अधिक बड़ा होता

है। इसे कभी-कभी जनसांख्यिकीय लाभांश अथवा आयु संरचना के परिवर्तन से प्राप्त होने वाला फ़ायदा कहा जाता है। लेकिन यह लाभ की स्थिति अल्पकालीन होती है क्योंकि कार्यशील आयु वाले लोगों का बड़ा वर्ग आगे चलकर काम न करने वाले बूढ़े लोगों के रूप में बदल जाता है।

2.2 भारत की जनसंख्या का आकार और संवृद्धि

भारत विश्व में चीन के बाद दूसरा सबसे बड़ी जनसंख्या वाला देश है, सन् 2011 की जनगणना के अनुसार इसकी कुल जनसंख्या 121 करोड़ (यानी 1.21 अरब) है। जैसा कि सारणी 1 में देखा जा सकता है भारत की जनसंख्या संवृद्धि दर हमेशा बहुत ऊँची नहीं रही। वर्ष 1901-1951 के बीच औसत वार्षिक संवृद्धि दर 1.33% से अधिक नहीं हुई जो कि एक साधारण संवृद्धि दर कही जा सकती है। सच तो यह है कि 1911 से 1921 के बीच संवृद्धि की दर नकारात्मक यानी ऋणात्मक रूप से -0.03% रही। इसका कारण 1918-19 के दौरान इंफ्लूएंजा महामारी का भीषण तांडव था जिसने लगभग 1.25 करोड़ लोगों यानी देश की कुल जनसंख्या के 5% अंश को मौत के मुँह में ढकेल दिया था (विसारिया और विसारिया 2003: 191)। ब्रिटिश राज से स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जनसंख्या संवृद्धि की दर में काफ़ी बढ़ोतरी हुई और वह 1961-1981 के दौरान 2.2% पर पहुँच गई। तब से, यद्यपि वार्षिक संवृद्धि दर में गिरावट तो आई है फिर भी वह विकासशील दुनिया में सबसे ऊँची बनी हुई है। चार्ट 1 में स्थूल जन्म और मृत्यु दरों की तुलनात्मक घट बढ़ दिखाई गई है। जनसांख्यिकीय संक्रमण की अवस्था का प्रभाव स्पष्ट रूप से आरेख में दिखाया गया है जिससे यह प्रकट होता है कि ये दरें 1921 से 1931 तक के दशक के बाद एक दूसरे से भिन्न दिशा में जाने लगी थीं।

सारणी 1: भारत की जनसंख्या और 20वीं एवं 21वीं शताब्दी में इसकी संवृद्धि

वर्ष	कुल जनसंख्या (लाखों में)	औसत वार्षिक संवृद्धि दर (%)	दशकीय संवृद्धि दर (%)
1901	238	–	–
1911	252	0.56	5.8
1921	251	-0.03	-0.3
1931	279	1.04	11.0
1941	319	1.33	14.2
1951	361	1.25	13.3
1961	439	1.96	21.6
1971	548	2.22	24.8
1981	683	2.20	24.7
1991	846	2.14	23.9
2001	1028	1.95	21.5
2011	1210	1.63	17.7

वेबसाइट: https://ayush.gov.in

चार्ट 1: भारत में जन्म एवं मृत्यु दरें 1901–2017
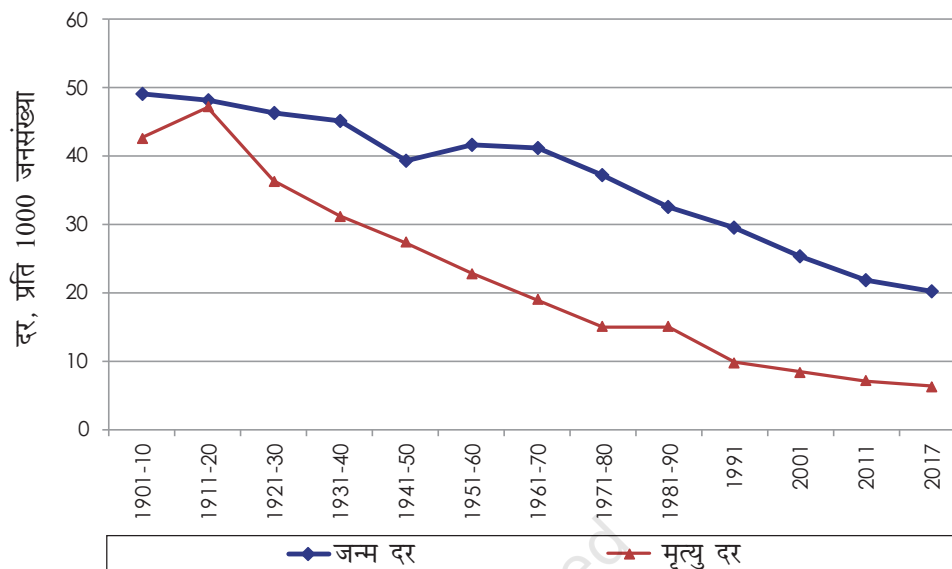
स्रोत: राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग, भारत सरकार
वेबसाइट: https://populationcommission.nic.in/facts1.htm#; राष्ट्रीय स्वास्थ्य प्रालेख 2018, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार; आर्थिक सर्वेक्षण 2018-19, भारत सरकार।

1931 से पहले, मृत्यु दरें और जन्म दरें दोनों ही ऊँची रही हैं। इस संक्रमण वर्ष के बाद मृत्यु दरों में तेज़ी से गिरावट आई हैं जबकि जन्म दर थोड़ी-सी गिरी है। 1921 के बाद मृत्यु दर में गिरावट आने का प्रमुख कारण यह था कि अकालों और महामारियों पर नियंत्रण बढ़ गया। इनमें महामारियों की रोकथाम संभवतः अधिक महत्त्वपूर्ण साबित हुई। पहले अनेक प्रकार की महामारियाँ थीं जिनमें विभिन्न प्रकार के ज्वर, प्लेग, चेचक और हैजा अधिक विनाशकारी थे। लेकिन 1918-19 की इंफ्लूएंजा नामक महामारी ने तो अकेले ही देशभर में तबाही मचा दी जिसमें 125 लाख यानी सवा करोड़ लोगों को अर्थात् तत्कालीन भारत की कुल जनसंख्या के लगभग 5% भाग को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। (इस महामारी में हुई मृत्यु के बारे में अलग-अलग अनुमान लगाए गए जिनमें से कुछ के आँकड़े बहुत ऊँचे थे। स्पैनिश फ्लू नामक महामारी अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं को पार करके संपूर्ण भूमंडल में फैल गई। इस संबंध में बॉक्स 2.2 में दी गई जानकारी पठनीय है। अंग्रेज़ी में 'पैंडेमिक' शब्द एक ऐसी महामारी के लिए उपयोग किया जाता है जो बहुत व्यापक भौगोलिक क्षेत्र को प्रभावित करती है। वहीं 'एपिडेमिक' शब्द को सीमित क्षेत्र में फैली महामारी के लिए उपयोग किया जाता है)।

ऐसी बीमारियों के उपचार में किए गए सुधारों, बड़े पैमाने पर चलाए गए टीकाकरण कार्यक्रमों और व्यापक रूप से संचालित स्वच्छता अभियानों ने महामरियों को नियंत्रित करने में सहायता की। किंतु मलेरिया, क्षय रोग और पेचिश व दस्त की बीमारियाँ आज भी लोगों के लिए जानलेवा बनी हुई हैं हालाँकि, अब उनसे मरने वालों की संख्या उतनी अधिक नहीं होती जितनी पहले महामारी के रूप में उनके प्रकोप के कारण हुआ करती थीं। सूरत नगर सितंबर 1994 में कुछ हद तक प्लेग की महामारी की चपेट में आ गया था और 2006 में देश के अनेक भागों में डेंगी और चिकनगुनिया की बीमारी के व्यापक रूप से फैलने की खबरें पढ़ने-सुनने को मिलीं।

बॉक्स 2.2

1918-19 की सार्वभौमिक इंफ्लूएंजा महामारी

इंफ्लूएंजा नाम की बीमारी एक विषाणु द्वारा फैलाई जाती है जो मुख्य रूप से श्वसन तंत्र के ऊपरी अवयवों यानी नाक, गला तथा श्वसनी और कभी-कभी फेफड़ों पर भी आक्रमण कर देता है। इंफ्लूएंजा के विषाणुओं की जननिक बनावट कुछ ऐसी होती है कि वे अपने आप में छोटे-बड़े जननिक परिवर्तन लाकर स्वयं को मौजूदा टीका-द्रव्यों (वैक्सीन) के असर से उन्मुक्त कर लेते हैं। पिछली शताब्दी में इंफ्लूएंजा के विषाणुओं में तीन बार बड़े-बड़े जननिक परिवर्तन आए जिसके परिणामस्वरूप सार्वभौमिक महामारियाँ (पैंडेमिक्स) फैली और अत्यंत विशाल संख्या में लोग इंफ्लूएंजा से पीड़ित हुए और मृत्यु का ग्रास बने। इनमें सबसे कुख्यात महामारी ''स्पैनिश फ्लू'' थी जिसने विश्व की जनसंख्या को बड़े पैमाने पर प्रभावित किया और ऐसा समझा जाता है कि 1918-1919 के दौरान इससे पीड़ित होकर कम-से-कम 4 करोड़ लोग मौत के मुँह में चले गए। इसके बाद अभी कुछ साल पहले ही इंफलूएंजा की महामारी देशव्यापी स्तर पर कई क्षेत्रों में दो बार फैली - 1957 में 'एशियन इंफ्लूएंजा' और 1968 में 'हांगकांग इंफ्लूएंजा' और उससे विश्वस्तर पर लाखों लोग पीड़ित हुए और मृत्यु का ग्रास बन गए।

1918-19 के स्पैनिश फ्लू से विश्व स्तर पर कुल मिलाकर कितनी मौतें हुई यह ठीक-ठीक बताना संभव नहीं है पर यह अनुमान लगाया जाता है कि संपूर्ण विश्व की कुल जनसंख्या का 20% भाग कुछ हद तक इस महामारी से पीड़ित हुआ और 2.5 से 5% तक मानव जनसंख्या इसकी वजह से नष्ट हो गई। इंफ्लूएंजा से पहले 25 सप्ताहों में ही ढाई करोड़ लोगों की मौत हो गई; इसके विपरीत एड्स की बीमारी से पहले 25 वर्ष में ढाई करोड़ लोग मृत्यु को प्राप्त हुए। इंफलूएंजा विश्वभर में फैल गया और इससे छह महीने में 250 लाख से भी अधिक लोगों की मृत्यु हो गई। कुछ अन्य अनुमानों के अनुसार मरने वालों की कुल संख्या इससे दोगुनी से भी अधिक यानी 10 करोड़ तक हो सकती है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में लगभग 28% जनसंख्या इस महामारी से पीड़ित हुई और उनमें से 5,00,000 से 6,75,000 लोग काल के गाल में चले गए। ब्रिटेन में इससे मरने वालों की संख्या 2,00,000 और फ्रांस में 4,00,000 से भी ज़्यादा बताई जाती है। अलास्का और दक्षिणी अफ्रीका में इससे गाँव-के-गाँव तबाह हो गए। आस्ट्रेलिया में इससे 10,000 लोग मरे तथा फीजी द्वीपसमूह में केवल दो सप्ताह में वहाँ की 14% जनसंख्या नष्ट हो गई और पश्चिमी समोआ में 22% लोग मर गए। भारत में अनुमानत: 170 लाख लोग मारे गए यानी तत्कालीन भारत की जनंसख्या का लगभग 5% भाग नष्ट हो गया। ब्रिटिश भारतीय सेना में लगभग 22% सैनिक इस महामारी से पीड़ित होकर मृत्यु को प्राप्त हो गए।

यद्यपि प्रथम विश्व युद्ध इस फ्लू का प्रत्यक्ष कारण नहीं था, किंतु सैनिकों के साथ-साथ रहने और सामूहिक आवागमन से रोग के फैलाव में तेज़ी आई। यह भी अनुमान लगाया गया है कि लड़ाई के तनावपूर्ण माहौल में रासायनिक आक्रमणों के कारण सैनिकों की रोग से मुकाबला करने की रोग प्रतिरोधक क्षमता कमज़ोर हो गई थी जिसके कारण बीमारी की चपेट में आने की उनकी संभावना बढ़ गई।

स्रोत: विकीपीडिया और विश्वस्वास्थ्य संगठन के वेबपृष्ठों से संकलित
http://en.wikipedia.org/wki/spanish_flu
http://www.who.int/mediacentre/factsheets/fs211/en/

अकाल भी बढ़ती हुई मृत्यु दर के एक प्रमुख एवं पुनरावर्तक स्रोत थे। एक जमाना था जब अकाल व्यापक रूप से और बार-बार पड़ते थे। उन दिनों अकाल पड़ने के कई कारण होते थे जिनमें से एक यह था कि जिन इलाकों में खेती वर्षा पर निर्भर रहती थी वहाँ वर्षा की कमी के कारण खेती की उपज कम होती थी जिससे लोग घोर गरीबी और कुपोषण की हालत में जीवन बिताने को मजबूर हो जाते थे। इसके अलावा, परिवहन और संचार के साधनों की समुचित व्यवस्था न होने के कारण और राज्य की ओर से इस दिशा में पर्याप्त प्रयत्न न किए जाने के कारण भी अकाल पड़ते थे। किंतु, जैसाकि अमर्त्य सेन एवं अनेक विद्वानों ने दर्शाया है कि अकाल अनाज के उत्पादन में गिरावट आने के कारण ही नहीं पड़े बल्कि 'हकदारी की पूर्ति का अभाव' (failure of entitlements), अथवा भोजन खरीदने या और किसी तरह से प्राप्त करने की लोगों की अक्षमता के कारण भी अकाल पड़ते रहे हैं। लेकिन अब भारतीय कृषि की उत्पादकता में (विशेष रूप से सिंचाई के विस्तार के कारण) पर्याप्त वृद्धि हो जाने, संचार के साधनों में सुधार हो जाने और सरकार द्वारा अधिक तेज़ी से राहत और निरोधक उपाय किए जाने से अकाल के कारण होने वाली मौतों की संख्या में बहुत तेज़ी से कमी आई है। किंतु आज भी देश के कुछ पिछड़े क्षेत्रों से भुखमरी के कारण लोगों के मरने के समाचार मिलते रहते हैं। सरकार ने अभी कुछ समय पहले ही ग्रामीण इलाकों में भूख और भुखमरी की समस्या के समाधान के लिए महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम (Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act) नामक एक कानून बनाया है।

हालाँकि मृत्यु दर की तरह जन्म दर में उतनी तेज़ी से गिरावट नहीं आई। इसका कारण यह है कि जन्म दर एक ऐसी सामाजिक-सांस्कृतिक प्रघटना है जिसमें परिवर्तन अपेक्षाकृत धीमी गति से आता है। सामान्यत: समृद्धि का बढ़ता स्तर जन्म दर को मजबूती से नीचे खींचता है। जब एक बार शिशु मृत्यु दरों में गिरावट आ जाती है और शिक्षा और जागरूकता के स्तरों में भी कुल मिलाकर वृद्धि हो जाती है तो फिर परिवार का आकार छोटा होने लगता है। जैसा कि नक्शा 1 पृष्ठ संख्या 21 में देखा जा सकता है भारत के राज्यों के बीच प्रजनन दरों के मामले में अत्यधिक भिन्नताएँ पाई जाती हैं। आंध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, तमिलनाडु और पश्चिम बंगाल जैसे कुछ राज्य कुल प्रजनन दर 1.7 (2016) तक नीचे लाने में सफल हुए हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि इन राज्यों में औसत स्त्री 1.7 बच्चे ही पैदा करती है जो कि प्रतिस्थापन स्तर से नीचे है। केरल की कुल प्रजनन दर भी प्रतिस्थापन स्तर से नीचे है जिसका तात्पर्य यह होगा कि भविष्य में जनसंख्या में गिरावट आ जाएगी। लेकिन कुछ राज्य, खासतौर पर बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश ऐसे राज्य हैं जहाँ 2009 में प्रजनन दरें 3 या उससे भी ऊपर हैं। वर्ष 2009 के टी.एफ.आर. के अनुसार इन राज्यों की प्रजनन दर क्रमश: 3.3, 2.8, 2.7 और 3.1 था। वर्ष 2015 के आँकड़ों के अनुसार भारत में जन्म दर कुल 20.2% है। इसमें से ग्रामीण क्षेत्रों में जन्म दर 22.4% और नगरीय क्षेत्रों में 17.3% था। भारत में सबसे अधिक जन्मदर उत्तर प्रदेश और बिहार में है यह है 25.9% और 26.4% है और ये राज्य मिलकर 2026 तक भारत की कुल जनसंख्या का (50%) लगभग आधा भाग तक बढ़ा सकते हैं। अकेला उत्तर प्रदेश ही अनुमानत: एक-चौथाई तक (22%) बढ़ा सकता है। चार्ट-2 (पृष्ठ संख्या 23) में विभिन्न राज्यों में क्षेत्रीय समूह के रूप में उनकी जनसंख्या बढ़ोतरी दर्शाई गई है।

नक्शा 1: भारत में राज्यवार जन्म दरें, 2017

स्रोत: एस.आर.एस. बुलेटिन, भारत सरकार, जुलाई 2019
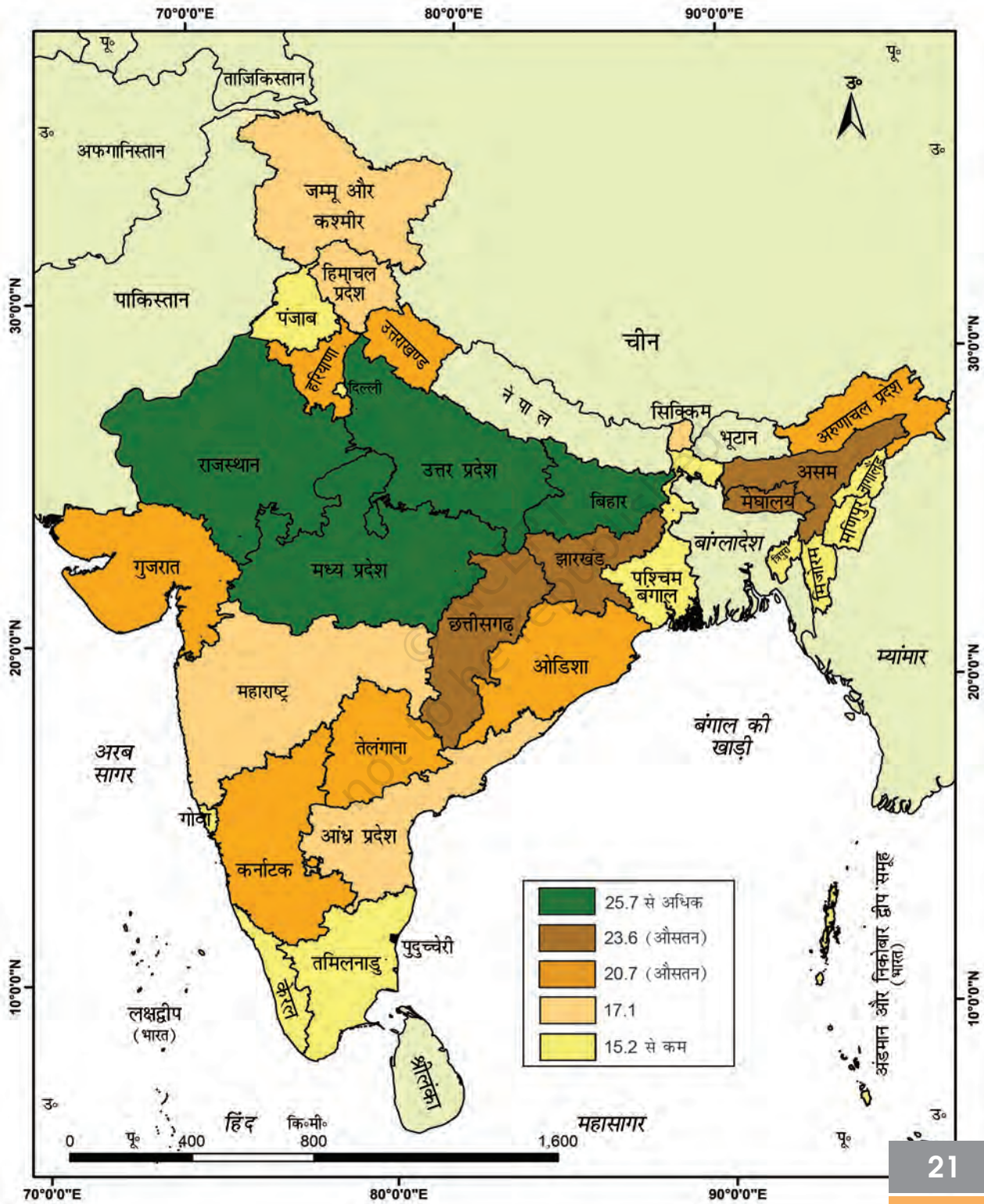
चार्ट 2: वर्ष 2041 तक प्रक्षेपित जनसंख्या के क्षेत्रवार हिस्से

महाराष्ट्र और गुजरात (13%)
आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, तमिलनाडु, केरल और कर्नाटक (16%)
पं॰ बंगाल, उड़ीसा और झारखंड (13%)
पंजाब, हरियाणा और दिल्ली (5%)
मध्य प्रदेश, राजस्थान और छत्तीसगढ़ (15%)
उत्तर प्रदेश और बिहार (28%)
अन्य राज्य (10%)

स्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण, 2018-19, खंड-1, पृष्ठ-137, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।
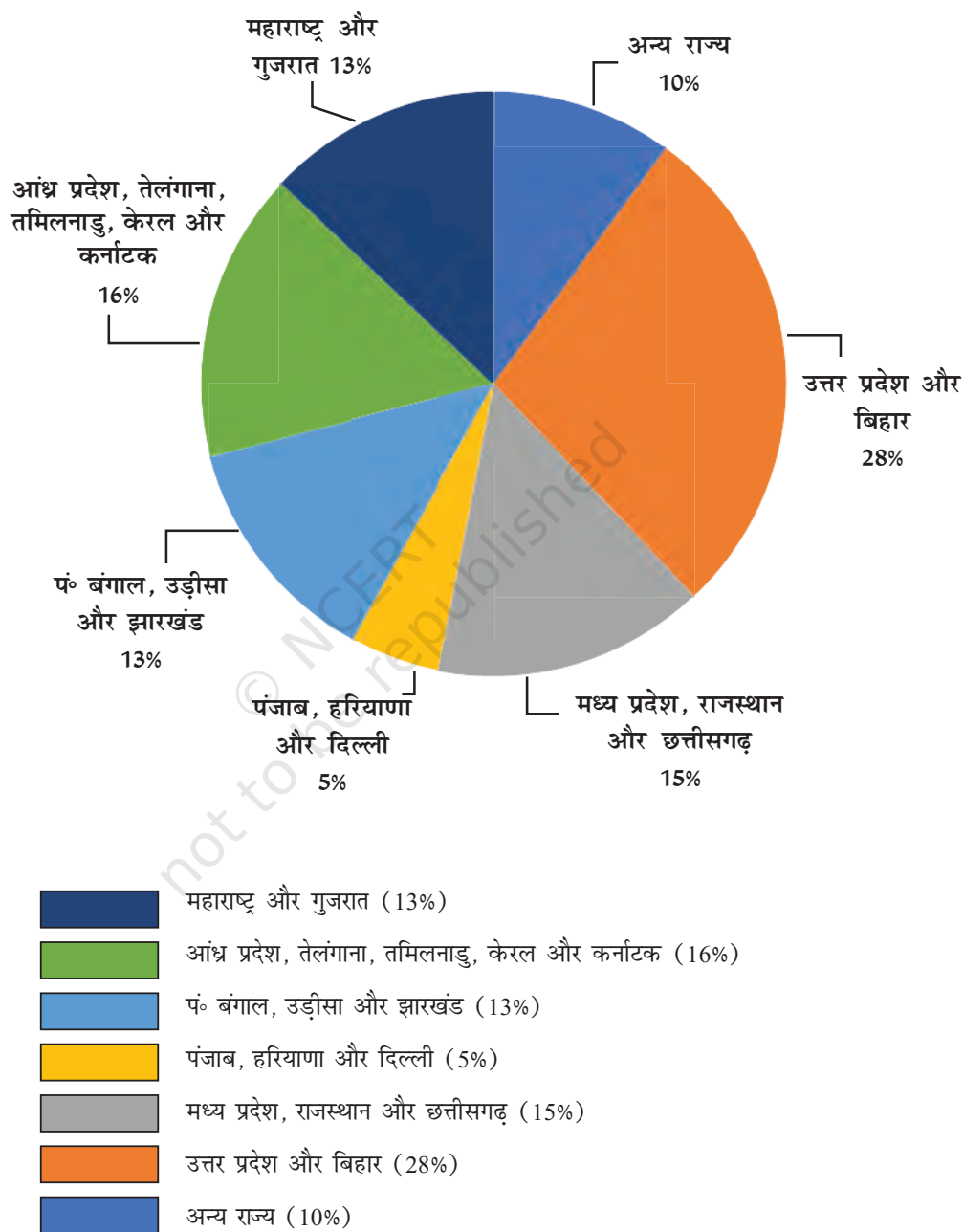
2.3 भारतीय जनसंख्या की आयु संरचना

भारत की जनसंख्या बहुत जवान है यानी अधिकांश भारतीय युवावस्था में हैं और यहाँ की आयु का औसत भी अधिकांश अन्य देशों की तुलना में कम है। सारणी 2 दर्शाती है कि देश की संपूर्ण जनसंख्या में 15 वर्ष से कम आयु वाले वर्ग का हिस्सा जो 1971 में 42% के सर्वोच्च स्तर पर था घटकर 2001 में 35% के स्तर पर आ गया है। 15–60 के आयु वर्ग का हिस्सा 53% से कुछ बढ़कर 59% हो गया है जबकि 60 वर्ष से ऊपर की आयु वाले वर्ग का हिस्सा बहुत छोटा है लेकिन वह उसी अवधि के दौरान (5% से 7% तक) बढ़ना शुरू हो गया है। लेकिन अगले दो दशकों में भारतीय जनसंख्या की आयु संरचना में काफ़ी परिवर्तन आने की उम्मीद है और यह परिवर्तन अधिकांशतः आयु क्रम के दोनों सिरों पर आएगा। जैसाकि सारणी 2 में दिखाया गया है 0–14 आयु वर्ग का हिस्सा लगभग 11% घट जाएगा (यह 2001 में 34% था जो 2026 में घटकर 23% हो जाएगा) जबकि 60 वर्ष से अधिक के आयु वर्ग में लगभग 5% की वृद्धि होगी (यह 2001 के 7% से बढ़कर 2026 में 12% हो जाएगा)। चार्ट 3 में 'जनसंख्या पिरामिड' का 1961 से लेकर 2016 तक का प्रक्षेपित स्वरूप दिखाया गया है।

सारणी 2 : भारत की जनसंख्या की आयु संरचना, 1961–2026

वर्ष	आयु वर्ग			जोड़
	0–14 वर्ष	*15–59 वर्ष*	*60 वर्ष से अधिक*	
1961	41	53	6	100
1971	42	53	5	100
1981	40	54	6	100
1991	38	56	7	100
2001	34	59	7	100
2011	29	63	8	100
2026	23	64	12	100

टिप्पणीः आयु वर्ग के खानों में उनके हिस्सों का प्रतिशत दिया गया है, हो सकता है कि कहीं पूर्णांकन के कारण इन प्रतिशतांशों का जोड़ 100 न हो।

स्रोतः राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग के जनसंख्या प्रक्षेप विषयक तकनीकी समूह के आँकड़ों (1996 और 2006) पर आधारित
1996 की रिपोर्ट के वेबपृष्ठ *https://populationcommission.nic.in/facts1.htm*

चार्ट 3: आयु समूह पिरामिड, 1961, 1981, 2001 एवं 2026
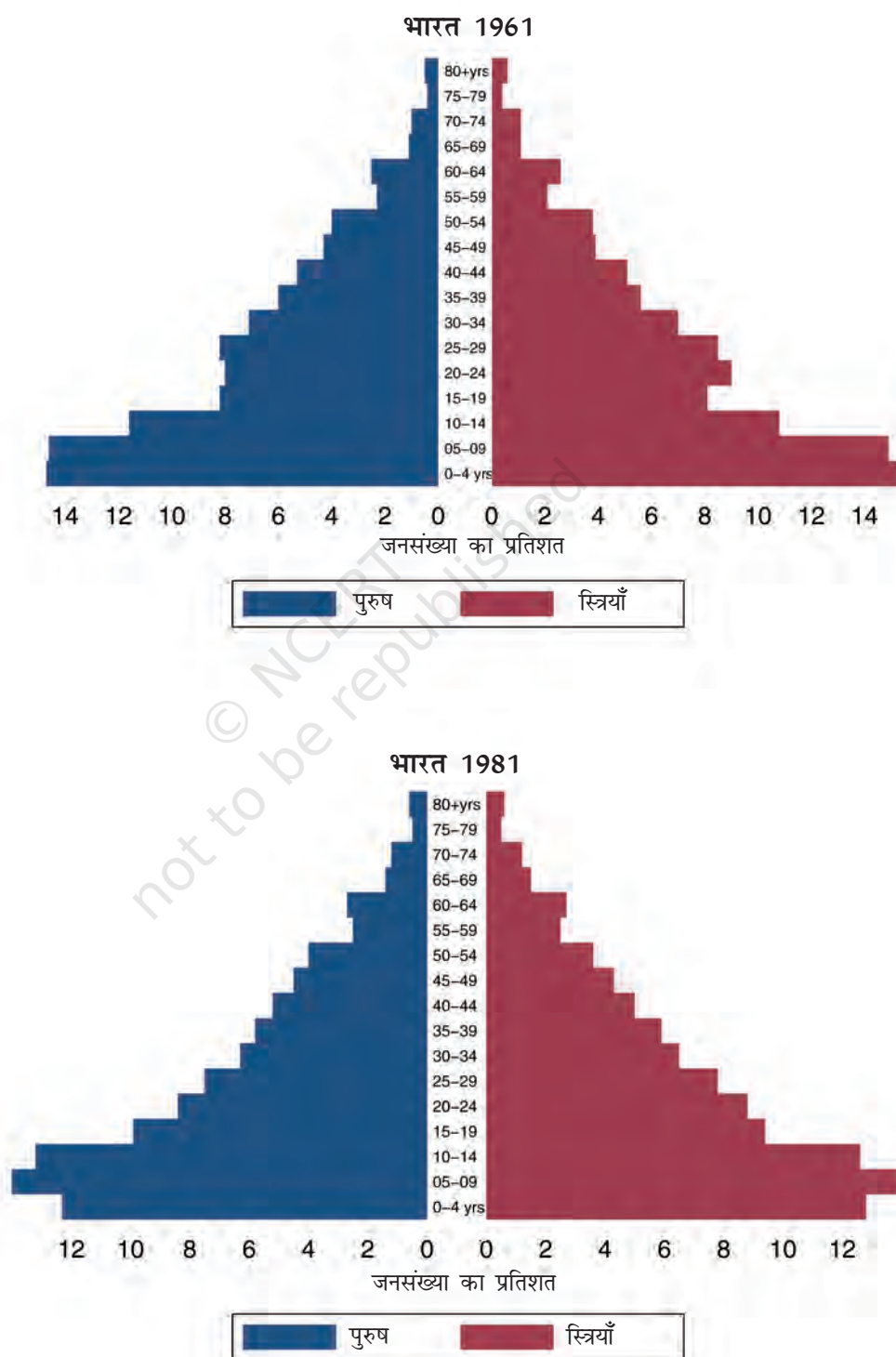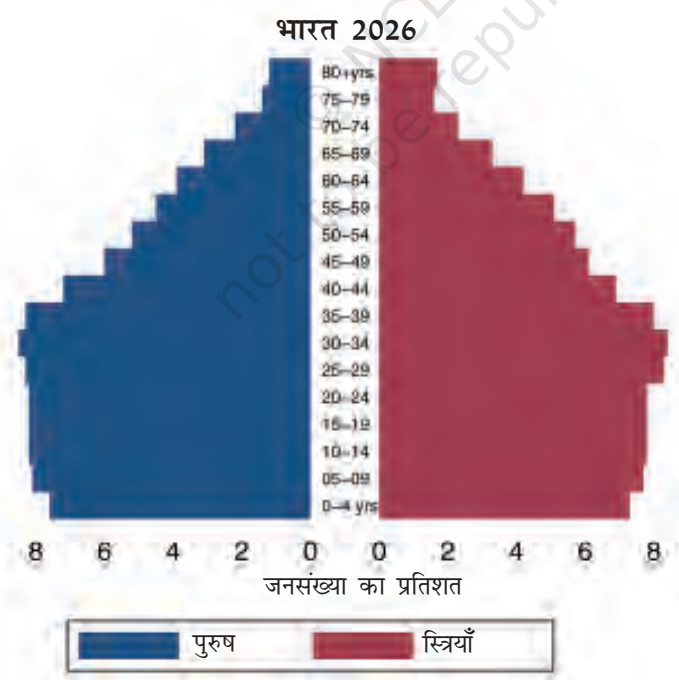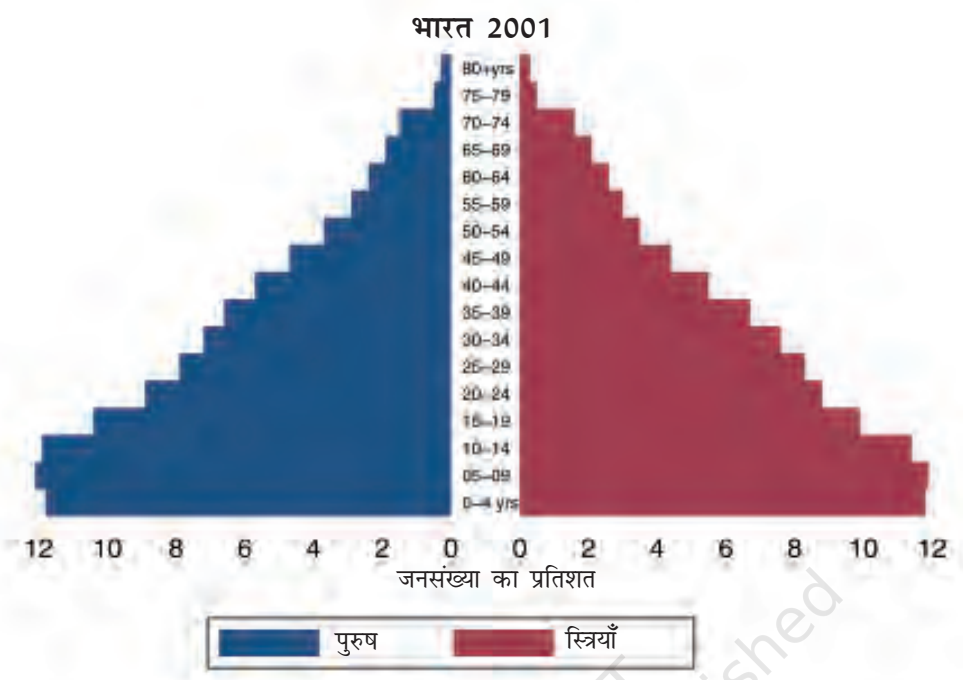
स्रोत: भारतीय जनगणना (1961, 1981 और 2001) के संगत खंडों और राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग के जनसंख्या प्रक्षेप विषयक समूह की रिपोर्ट (2006) पर आधारित

चार्ट 3 के लिए अभ्यास

चार्ट 3 में दिखाए गए आयु समूह पिरामिडों में सारणी 2 में प्रस्तुत आयु समूह संबंधी आँकड़ों के अधिक विस्तृत ब्यौरे दिए गए हैं। इन पिरामिडों में पुरुषों के लिए (बाई ओर) और स्त्रियों के लिए (दाहिनी ओर) अलग-अलग आँकड़े दिए गए हैं और उनके बीच में संबद्ध पंचवर्षीय आयु समूह दिखाए गए हैं। समस्तरीय छड़ों (Horizontal bars) पर (जिनमें किसी विशेष आयु समूह के पुरुष और स्त्रियाँ दोनों शामिल हैं) दृष्टिपात करने से आपको जनसंख्या की आयु संरचना का अंदाजा हो जाएगा। पिरामिड में आयु समूह सबसे नीचे 0-4 वर्ष वाले समूह से शुरू होकर सबसे ऊपर 80 वर्ष और उससे अधिक के आयु समूह तक दिए गए हैं जिनमें से तीन पिरामिड 1961, 1981 और 2001 की दसवर्षीय जनगणना की स्थिति को दर्शाते हैं और चौथा पिरामिड 2026 की अनुमानित स्थिति का द्योतक है। 2026 वाला पिरामिड संबंधित आयु समूहों के अनुमानित भावी आकार को दर्शाता है जो प्रत्येक आयु समूह की पुरानी संवृद्धि दरों के आँकड़ों पर आधारित है। ऐसे अनुमानों को 'प्रक्षेप' भी कहा जाता है। यह पिरामिड जन्म दर में आई क्रमिक गिरावट और आयु संभाविता में हुई बढ़ोतरी को दर्शाते हैं। जैसे-जैसे अधिकाधिक लोग वृद्धावस्था तक जीवित रहने लगते हैं तो पिरामिड का सबसे ऊपरी हिस्सा चौड़ा होता जाता है और जैसे-जैसे जन्म दर के नए मामले अपेक्षाकृत कम होते जाते हैं पिरामिड का सबसे निचला हिस्सा सँकरा होता जाता है। लेकिन जन्म दर में गिरावट काफ़ी धीमी गति से आती है, इसलिए 1961 से 1981 के बीच पिरामिड के सबसे निचले खंडों में अधिक परिवर्तन नहीं आया। पिरामिड का बीच का हिस्सा बराबर चौड़ा होता जाता है क्योंकि कुल जनसंख्या में इसका हिस्सा बढ़ता जाता है। इससे बीच वाले आयु समूहों में एक 'उभार' बन जाता है जो 2026 के पिरामिड में साफ़ दिखाई देता है। इसी उभार को 'जनसांख्यिकीय लाभांश' कहा जाता है जिसके बारे में इसी अध्याय में आगे चर्चा की जाएगी।

इस चार्ट का सावधानीपूर्वक अध्ययन करें। अपने अध्यापक की सहायता से यह पता लगाने का प्रयत्न करें कि 1961 की नयी पीढ़ी (0-4 आयु समूह) जब आने वाले वर्षों में पिरामिड में ऊपर की ओर बढ़ती जाएगी तो उसकी क्या स्थिति होगी।

- वर्ष 1961 का 0-4 आयु समूह परवर्ती वर्षों के पिरामिडों में कहाँ स्थित होगा?
- जब आप 1961 से 2026 की ओर बढ़ेंगे तो पिरामिड का कौन सा हिस्सा सबसे चौड़ा होगा?
- आपके विचार में वर्ष 2051 और 3001 में पिरामिड का आकार कैसा होगा?

जैसे विभिन्न क्षेत्रों में प्रजनन दरें अलग-अलग होती हैं उसी प्रकार आयु संरचना में भी बहुत अधिक क्षेत्रीय अंतर पाए जाते हैं। एक ओर तो स्थिति यह है कि केरल जैसा राज्य आयु संरचना के मामले में विकसित देशों की स्थिति को प्राप्त करने लगा है, वहीं दूसरी ओर उत्तर प्रदेश की स्थिति बिल्कुल भिन्न है जहाँ अपेक्षाकृत छोटे आयु समूहों में जनसंख्या के अनुपात काफ़ी अधिक है और वृद्धजनों के अनुपात अपेक्षाकृत कम है। कुल मिलाकर भारत की स्थिति लगभग बीच की है क्योंकि यहाँ उत्तर प्रदेश जैसे राज्य भी हैं और केरल जैसे राज्य भी, जिनकी संख्या ज्यादा है। चार्ट 4 में उत्तर प्रदेश और केरल से संबंधित वर्ष 2026 की अनुमानित जनसंख्या के पिरामिड दिखाए गए हैं। केरल और उत्तर प्रदेश के पिरामिडों में सबसे चौड़े भागों की स्थिति के अंतर को ध्यान से देखिए।

चार्ट 4: आयु संरचना पिरामिड, केरल और उत्तर प्रदेश 2026
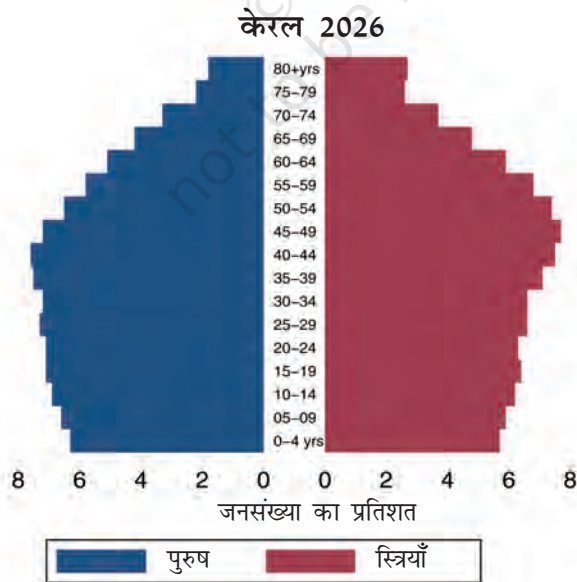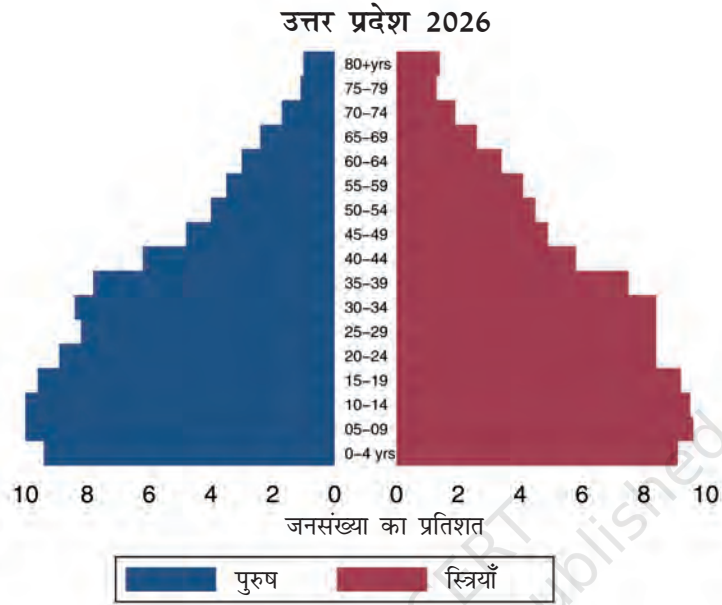
स्रोतः राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग (2006) के जनसंख्या प्रक्षेप विषयक तकनीकी समूह की रिपोर्ट

आयु संरचना में अपेक्षाकृत छोटी आयु के वर्गों की ओर जो झुकाव पाया जाता है उसे भारत के लिए लाभकारी माना जाता है। पिछले दशक में पूर्व एशियाई अर्थव्यवस्थाओं की तरह और आज के आयरलैंड की तरह यह समझा जाता है कि भारत को भी 'जनसांख्यिकीय लाभांश' का फ़ायदा मिल रहा है। यह लाभांश इस तथ्य के कारण मिल रहा है कि कार्यशील लोगों की वर्त्तमान पीढ़ी अपेक्षाकृत बड़ी है एवं उसे वृद्ध लोगों की अपेक्षाकृत छोटी पीढ़ी का भरणपोषण करना पड़ रहा है। लेकिन यह लाभ अपने आप मिलने वाला नहीं है बल्कि इसके लिए उपयुक्त नीतियों का सोच-समझकर पालन करना होगा जैसाकि बॉक्स 2.3 में वर्णन किया गया है।

बॉक्स 2.3

क्या बदलती हुई आयु संरचना भारत को 'जनसांख्यिकीय लाभांश' प्रदान कर रही है?

जनसंख्या की आयु संरचना से जनसांख्यिकीय लाभ या 'लाभांश' इस तथ्य के कारण मिल सकता है कि भारत इस समय विश्व भर में सबसे युवा देशों में से एक है (और आगे भी कुछ समय के लिए रहेगा)। वर्ष 2000 में भारत की जनसंख्या का एक-तिहाई भाग 15 वर्ष की आयु से नीचे था। वर्ष 2020 में भारतीयों की औसत उम्र सिर्फ 29 साल होगी जबकि चीन और संयुक्त राज्य अमेरिका में औसत आयु 37 वर्ष, पश्चिमी यूरोप में 45 वर्ष और जापान में 48 वर्ष होगी। इसका अर्थ यह होगा कि भारत के पास काफ़ी बड़ा और बढ़ता हुआ श्रमिक बल होगा जो संवृद्धि तथा समृद्धि की दृष्टि से अप्रत्याशित लाभ प्रदान कर सकेगा।

'जनसांख्यिकीय लाभांश' जनसंख्या में काम न करने वाले पराश्रित लोगों की तुलना में कार्यशील यानी कमाने वाले लोगों के अनुपात में वृद्धि के फलस्वरूप प्राप्त होता है। आयु की दृष्टि से, कार्यशील जनसंख्या मोटे तौर पर 15 से 64 वर्ष तक की आयु की होती है। कार्यशील आयु वर्ग स्वयं अपना भरण-पोषण तो करता ही है साथ ही उसे अपने आयु वर्ग से बाहर के आयु वर्ग (यानी बच्चों और वृद्धों) को भी सहारा देना होता है जो स्वयं काम नहीं कर सकते हैं और इसलिए पराश्रित होते हैं। जनसांख्यिकीय संक्रमण आयु संरचना में होने वाले परिवर्तन 'पराश्रितता-अनुपात' को यानी जनसंख्या के अनर्जक (न कमाने वाले) आयु वर्ग और अर्जक यानी कार्यशील आयु वर्ग के बीच के अनुपात को कम कर देते हैं जिससे संवृद्धि होने की संभावना उत्पन्न हो जाती है।

लेकिन इस संभावना को वास्तविक संवृद्धि में तभी बदला जा सकता है जब कार्यशील आयु वर्ग में शिक्षा और रोजगार के स्तरों में भी तदनुरूप वृद्धि होती जाए। यदि श्रमिक बल में शामिल नए लोग शिक्षित नहीं होंगे तो उनकी उत्पादकता नीची रहेगी। यदि वे बेरोजगार रहते हैं तो वे बिल्कुल भी नहीं कमा सकेंगे और कमाने वालों के बजाय पराश्रितों की श्रेणी में शामिल हो जाएँगे। अत: इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि आयु संरचना में परिवर्तन आने से लाभ प्राप्त हो जाएँगे जब तक कि योजनाबद्ध विकास के जरिए उनका ठीक से उपयोग नहीं किया जाए। वास्तविक समस्या तो पराश्रितता अनुपात की परिभाषा को लेकर है। यह प्रत्यय कार्यशील व गैर-कार्यशील आयु वर्गों के अनुपात पर आधारित होता है, न कि रोज़गारी हैसियत पर। मूल बात यह है कि कार्यशील आयु वर्ग का व्यक्ति बेरोज़गार भी हो सकता है। कार्यशील आयु वर्ग और बेरोजगार वर्ग के बीच का अंतर बेरोजगारी व अपूर्णरोज़गारी की स्थिति पर निर्भर है। बेरोजगारी या अपूर्णरोजगारी श्रमिक बल के एक भाग को उत्पादक कार्य से बाहर रखती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि क्यों कुछ देश जनसांख्यिकीय लाभांश का फ़ायदा उठा सकते हैं जबकि कुछ और देश ऐसा नहीं कर पाते।

क्रियाकलाप 2.3

आपके विचार से आयु संरचना का पीढ़ियों के बीच के संबंधों पर क्या प्रभाव पड़ता है? उदाहरण के लिए, क्या उच्च पराश्रितता अनुपात युवा एवं बुजुर्ग पीढ़ियों के बीच अधिक तनाव की परिस्थितियाँ पैदा कर सकता है? अथवा क्या यह युवा एवं बुजुर्ग के बीच अधिक घनिष्ठ और नजदीकी संबंध बनाएगा? इन प्रश्नों पर कक्षा में चर्चा करें और कारण बताते हुए अपने निष्कर्षों की सूची तैयार करने का प्रयत्न करें।

निस्संदेह, भारत के सम्मुख जनसांख्यिकीय लाभांश का अवसर द्वार खुला हुआ है। आयु वर्गों के रूप में परिभाषित पराश्रितता अनुपात पर जनसांख्यिकीय प्रवृत्तियों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है। कुल पराश्रितता अनुपात, जो 1970 में 79 था, 2005 में गिरकर 64 पर आ गया है। इस बात की पूरी संभावना है कि यह प्रक्रिया इस शताब्दी में आगे भी जारी रहेगी जिसके परिणामस्वरूप आयु आधारित पराश्रितता अनुपात 2025 में 48 तक गिर सकता है क्योंकि जनसंख्या में बच्चों का अनुपात आगे भी गिरता जाएगा। लेकिन यह पराश्रितता अनुपात फिर बढ़ते हुए 2050 में 50 तक पहुँच जाएगा क्योंकि तब वृद्धजनों के अनुपात में वृद्धि हो जाएगी।

किंतु समस्या रोजगार की है। वर्ष 1999-2000 के राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन के आँकड़ों और भारतीय जनगणना 2001 के आँकड़ों से पता चलता है कि ग्रामीण और नगरीय दोनों प्रकार के इलाकों में रोजगार पैदा करने (काम के नए अवसर उत्पन्न करने) की दर में एक साथ भारी गिरावट आई है। यह स्थिति युवाओं के मामले में भी सही बैठती है। 15-30 वर्ष के आयु वर्ग में रोजगार वृद्धि की दर 1987 से 1994 के बीच की अवधि में ग्रामीण और नगरीय दोनों इलाकों के पुरुषों के लिए लगभग 2.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी। यह 1994 से 2004 के दौरान ग्रामीण पुरुषों के लिए घटकर 0.7 प्रतिशत और नगरीय पुरुषों के लिए घटकर 0.3 प्रतिशत के स्तर पर आ गई। इसका तात्पर्य यह हुआ कि एक युवा, श्रमिक की ताकत द्वारा प्रस्तुत श्रम लाभ की संभावना को वास्तविकता में परिवर्तित नहीं कर सकता है।

आज भारत के सम्मुख अवसरों का जो जनसांख्यिकीय द्वार खुला है उसका लाभ उठाने के लिए रणनीतियाँ तो मौजूद हैं। लेकिन भारत का हाल का अनुभव यह बताता है कि बाजार की शक्तियाँ स्वयं यह सुनिश्चित नहीं कर पाती कि ऐसी रणनीतियों को कार्यान्वित किया जाएगा। जब तक आगे का कोई रास्ता नजर नहीं आता संभव है कि हम उन संभावित लाभों को गँवा देंगे जो देश की बदलती हुई आयु संरचना फिलहाल हमें देने वाली है।

स्रोत: फ्रंटलाइन के खंड 23, अंक 01, जनवरी 14-27, 2006 में प्रकाशित सी. पी. चंद्रशेखर के लेख से उद्धृत

2.4 भारत में गिरता हुआ स्त्री-पुरुष अनुपात

स्त्री-पुरुष अनुपात जनसंख्या में लैंगिक या लिंग संतुलन का एक महत्त्वपूर्ण सूचक है। जैसाकि ऊपर संकल्पनाओं संबंधी अनुभाग में कहा गया है ऐतिहासिक दृष्टि से, स्त्री-पुरुष अनुपात स्त्रियों के पक्ष में रहा है यानी प्रति 1,000 पुरुषों के पीछे स्त्रियों की संख्या आमतौर पर 1,000 से कुछ ऊपर ही रहती आई है। लेकिन जैसाकि सारणी 3 से स्पष्ट होता है भारत में स्त्री-पुरुष अनुपात पिछली एक शताब्दी से कुछ अधिक समय से गिरता जा रहा है। 20वीं शताब्दी के शुरू में भारत में प्रति 1,000 पुरुषों के पीछे स्त्रियों की संख्या 972 थी लेकिन 21वीं शताब्दी के शुरू में स्त्री-पुरुष अनुपात घटकर 933 हो गया है। पिछले चार दशकों

सारणी 3: भारत में गिरता हुआ स्त्री-पुरुष अनुपात, 1901-2011

वर्ष	स्त्री-पुरुष अनुपात (सभी आयु वर्गों में)	पिछले दशक की तुलना में अंतर	बाल स्त्री-पुरुष अनुपात (0-6 वर्ष)	पिछले दशक की तुलना में अंतर
1901	972	–	–	–
1911	964	–8	–	–
1921	955	–9	–	–
1931	950	–5	–	–
1941	945	–5	–	–
1951	946	+1	–	–
1961	941	–5	976	–
1971	930	–11	964	–12
1981	934	+4	962	–2
1991	927	–7	945	–17
2001	933	+6	927	–18
2011	943	+10	919	–8

टिप्पणी : स्त्री-पुरुष अनुपात को प्रति 1000 पुरुषों के पीछे स्त्रियों की संख्या के रूप में परिभाषित किया जाता है
स्रोत : 2011 की जनगणना के आधार पर

की प्रवृत्ति खासतौर पर चिंताजनक रही है, 1961 में स्त्री-पुरुष अनुपात 941 था जो घटते हुए अब तक के सबसे नीचे स्तर 927 पर आ गया हालाँकि 2001 में उसमें फिर मामूली सी बढ़ोतरी हुई है। अगर हम 2011 की जनगणना का अनुमानित स्त्री-पुरुष अनुपात को देखें तो प्रति 1,000 पुरुषों के पीछे 943 स्त्रियाँ हैं।

लेकिन जनसांख्यिकीविदों, नीति-निर्माताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं और इस विषय से जुड़े नागरिकों को वास्तव में जिस तथ्य ने डरा दिया है वह है बच्चों के लैंगिक यानी बाल स्त्री-पुरुष अनुपात में एकाएक आई भारी गिरावट। आयु विशेष से संबंधित स्त्री-पुरुष अनुपात का लेखा-जोखा रखने का काम 1961 में शुरू हुआ था। जैसाकि सारणी 3 में दर्शाया गया है 0-6 आयु वर्ग का स्त्री-पुरुष अनुपात (जिसे बाल स्त्री-पुरुष अनुपात कहा जाता है) आमतौर पर सभी आयु वर्गों के समग्र स्त्री-पुरुष अनुपात से काफ़ी ऊँचा रहता आया है लेकिन अब उसमें बड़ी तेजी से गिरावट आ रही है। वस्तुत: 1991 से 2001 तक के दशक के आँकड़ों में यह असामान्यता दिखाई देती है कि समग्र स्त्री-पुरुष अनुपात में जहाँ अब तक की सबसे अधिक 6 अंकों की बढ़ोतरी (निम्नतम 927 से 933) दर्ज हुई है लेकिन बाल स्त्री-पुरुष अनुपात, 18 अंकों का गोता लगाकर 945 से घटकर 927 के स्तर पर आ गया है और इस प्रकार वह पहली बार समग्र स्त्री-पुरुष अनुपात से नीचे चला गया है। सन् 2011 की जनगणना के अनुमानित आँकड़ों के अनुसार स्थिति और खराब हो गई और बाल स्त्री-पुरुष अनुपात मात्र 914 रह गया है।

राज्य स्तरीय बाल स्त्री-पुरुष अनुपात तो चिंता का और भी बड़ा कारण प्रस्तुत करते हैं। कम-से-कम 9 राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों का बाल स्त्री-पुरुष अनुपात प्रति 1,000 पुरुष के पीछे 900 स्त्रियों से भी कम है। इस संबंध में हरियाणा राज्य की स्थिति सबसे खराब है क्योंकि वहाँ का बाल स्त्री-पुरुष अनुपात अविश्वसनीय रूप से 793 (एकमात्र ऐसा राज्य जो 800 से नीचे है)। पंजाब के बाद जम्मू और कश्मीर, दिल्ली, चंडीगढ़ और उत्तराखंड आते हैं। जैसा कि नक्शा 2 में दिखाया गया है उत्तर प्रदेश, दमन और दीव, हिमाचल प्रदेश, लक्षद्वीप और मध्य प्रदेश सभी में यह अनुपात 925 से नीचे है जबकि बड़े राज्य जैसे

नक्शा 2: राज्यवार बाल स्त्री-पुरुष अनुपात (0–6 वर्ष) का मानचित्र, 2011
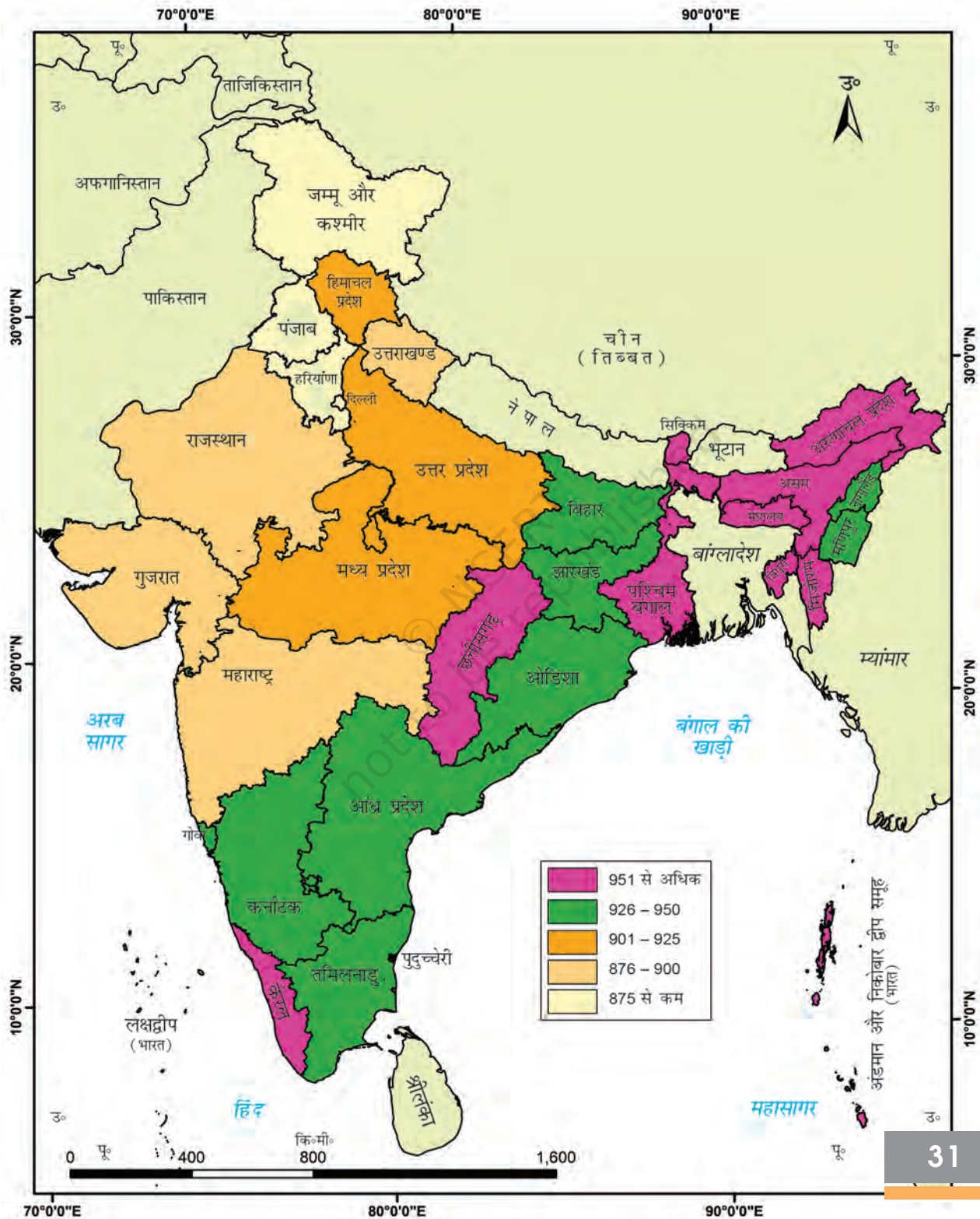
स्रोत: 2011 की जनगणना के आधार पर

कि पश्चिम बंगाल, असम, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक में यह अनुपात 919 के राष्ट्रीय औसत से तो ऊपर है पर 970 के स्तर से नीचे है। यहाँ तक कि केरल भी जहाँ का समग्र स्त्री-पुरुष अनुपात सर्वोत्तम रहा है बाल स्त्री-पुरुष अनुपात के मामले में 964 के स्तर पर कोई अच्छी स्थिति में नहीं है जबकि 972 का उच्चतम बाल स्त्री-पुरुष अनुपात अरुणाचल प्रदेश में पाया जाता है।

जनसांख्यिकीविदों और समाजशास्त्रियों ने भारत में स्त्री-पुरुष अनुपात में गिरावट आने के कई कारण बताए हैं। स्वास्थ्य संबंधी मुख्य कारक जो पुरुषों की बजाय केवल स्त्रियों को ही प्रभावित करता है वह है स्त्रियों का गर्भधारण करना और फिर बच्चा पैदा करना। इसलिए यह प्रश्न उठना प्रासंगिक है कि क्या स्त्री-पुरुष अनुपात में गिरावट का एक कारण यह हो सकता है कि केवल स्त्रियों को ही बच्चा पैदा करने में मौत की जोखिम उठानी पड़ती है। किंतु, यह माना जाता है कि विकास के साथ मातृ-मृत्यु दर में गिरावट आती है क्योंकि विकास की बदौलत पोषण, सामान्य शिक्षा और जागरूकता के स्तर बढ़ते जाते हैं और साथ ही चिकित्सा और संचार की सुविधाओं की उपलब्धता में सुधार होता जाता है। निस्संदेह, भारत में भी मातृ-मृत्यु दरें घटती जा रही हैं भले ही वे अंतर्राष्ट्रीय मानकों की तुलना में अब भी ऊँची बनी हुई है। इसलिए यह मुश्किल दिखाई देता है कि मातृ-मृत्यु दरों के कारण स्त्री-पुरुष अनुपात की हालत बिगड़ती गई है। एक अन्य तथ्य यह भी है कि बाल स्त्री-पुरुष अनुपात में गिरावट समग्र अनुपातों के मुकाबले अधिक तेज़ी से आई है इसलिए समाजविज्ञानियों का विश्वास है कि इस गिरावट के कारण को बालिका शिशुओं यानी बच्चियों के प्रति भेदभावपूर्ण व्यवहार में खोजना होगा।

बाल स्त्री-पुरुष अनुपात में गिरावट आने के अनेक कारण हैं जैसे, शैशवावस्था में बच्चियों की देखभाल की घोर उपेक्षा, जिससे उनकी मृत्यु दरें ऊँची हो जाती हैं; लिंग-विशेष के गर्भपात जिससे बच्चियों को पैदा ही होने नहीं दिया जाता; और बालिका शिशुओं की हत्या (अथवा धार्मिक या सांस्कृतिक अंधविश्वासों के कारण शैशवावस्था में ही बच्चियों की हत्या)। इनमें से प्रत्येक कारण एक गंभीर सामाजिक समस्या की ओर इशारा करता है और इस बात के कुछ प्रमाण भी मिलते हैं कि ये सब कारण भारत में कार्य करते रहे हैं। अनेक क्षेत्रों में बालिका हत्या की प्रथाएँ प्रचलित बताई जाती है जबकि ऐसी आधुनिक चिकित्सा तकनीकों को अधिक महत्त्व दिया जा रहा है जिनकी

सहायता से गर्भावस्था की प्रारंभिक स्थितियों में ही यह पता लगाया जा सकता है कि गर्भस्थ शिशु लड़का होगा या लड़की। सोनोग्राम (यानी अल्ट्रासाउंड, प्रौद्योगिकी पर आधारित एक्सरे जैसा नैदानिक उपाय) जो मूल रूप में भ्रूण के जननिक या अन्य विकारों का पता लगाने के लिए विकसित किया गया था अब संभवतः भ्रूण के लिंग का पता लगाने और चयनात्मक आधार पर बालिका भ्रूण को गर्भ में ही नष्ट कर देने के लिए काम में लाया जाने लगा है।

कुछ क्षेत्रों में बाल स्त्री–पुरुष अनुपातों का नीचा स्तर इस तर्क का समर्थन करता प्रतीत होता है। आश्चर्यजनक तथ्य तो यह है कि निम्नतम बाल स्त्री–पुरुष अनुपात भारत के सबसे अधिक समृद्ध क्षेत्रों में पाए जाते हैं। भारत की आर्थिक सर्वेक्षण 2018–19, इसी तरह पंजाब, हरियाणा, चंडीगढ़ और दिल्ली में भी प्रति व्यक्ति आय बहुत उच्च है लेकिन इन्हीं राज्यों में बाल स्त्री–पुरुष अनुपात बहुत निम्न है (तदर्थ)। इसलिए चयनात्मक गर्भपातों की समस्या गरीबी या अज्ञान अथवा संसाधनों के अभाव के कारण उत्पन्न नहीं हुई है। उदाहरण के लिए, यदि दहेज प्रथा के कारण माता–पिता को अपनी बेटियों के विवाह में देने के लिए दहेज के रूप में मोटा भुगतान करना पड़े तो समृद्धिशाली और धनाढ्य माता–पिता ऐसा दहेज देने में पूरी तरह समर्थ होंगे। किंतु, देखने में आया है कि सबसे अधिक समृद्धिशाली क्षेत्रों में ही स्त्री–पुरुष अनुपात सबसे नीचा है।

यह भी संभव है कि (हालाँकि अभी इस मुद्दे पर अनुसंधान चल रहा है) आर्थिक दृष्टि से समृद्ध परिवार अपेक्षाकृत कम–अक्सर एक या दो– बच्चे उत्पन्न करना चाहते हैं इसलिए कि वे अपनी पसंद के अनुसार ही लड़का या लड़की पैदा करना चाहेंगे। अल्ट्रासाउंड प्रौद्योगिकी की उपलब्धता के कारण ऐसा करना संभव हो गया है हालाँकि, सरकार ने कठोर कानून बना कर इस पद्धति पर प्रतिबंध लगा दिया है और इस कानून का उल्लंघन करने वाले को भारी जुर्माने और कारावास के दंड का भागी बना दिया है। प्रसवपूर्व नैदानिक प्रविधियाँ (दुरुपयोग का विनियमन और निवारण) अधिनियम नामक यह कानून 1999 से लागू है और इसे 2003 में और अधिक प्रबल बना दिया गया है। तथापि, बालिका बच्चों के विरुद्ध पूर्वाग्रह जैसी समस्याओं का दीर्घकालीन समाधान समाज में उत्पन्न होने वाली अभिवृत्तियों पर अत्यधिक निर्भर करता है हालाँकि नियम एवं कानून भी इसमें मदद कर सकते हैं। अपने देश में 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' कार्यक्रम का सूत्रपात हाल ही में भारत सरकार ने किया है। यह बाल स्त्री–पुरुष अनुपात को बढ़ाने के लिए एक कारगर नीति साबित हो सकती है।

2.5 साक्षरता

शिक्षित होने के लिए साक्षर होना जरूरी है और साक्षरता शक्ति संपन्न होने का महत्त्वपूर्ण साधन हैं। जनसंख्या जितनी अधिक साक्षर होगी आजीविका के विकल्पों के बारे में उसमें उतनी ही अधिक जागरूकता उत्पन्न होगी और लोग ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था में उतना ही अधिक भाग ले सकेंगे। इसके अलावा, साक्षरता से स्वास्थ्य के प्रति भी जागरूकता आती है और समुदाय के सदस्यों की सांस्कृतिक और आर्थिक कल्याण–कार्यों में सहभागिता बढ़ती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद साक्षरता के स्तरों में काफ़ी सुधार आया है एवं हमारी जनसंख्या का दो तिहाई हिस्सा अब साक्षर है। फिर भी साक्षरता दर को, भारत की जनसंख्या संवृद्धि दर के साथ मुकाबला करने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है क्योंकि हमारी जनसंख्या वृद्धि दर अब भी काफ़ी ऊँची बनी हुई है। इसलिए नयी पीढ़ियों को साक्षर बनाने के लिए अवश्य ही अत्यधिक प्रयत्न करने की आवश्यकता है क्योंकि हमारी नयी पीढ़ियाँ संख्या की दृष्टि से पहले के मुकाबले बहुत धीमी गति से कुछ छोटी होती जा रही है। (इसी अध्याय में पहले आयु संरचना और जनसंख्या पिरामिडों के बारे में जो चर्चा की जा चुकी है उसे याद करें)।

विभिन्न क्षेत्रों में स्त्री–पुरुषों तथा सामाजिक समूहों में साक्षरता की दरों में बहुत भिन्नता पाई जाती है। जैसाकि सारणी 4 में देखा जा सकता है स्त्रियों में साक्षरता दर पुरुषों की साक्षरता दर से लगभग 16.3% कम है। हालाँकि स्त्रियों में साक्षरता पुरुषों के मुकाबले अधिक तेज़ी से बढ़ रही है जिसका एक कारण यह भी है कि स्त्रियों में साक्षरता अपेक्षाकृत अधिक नीचे स्तरों से बढ़नी शुरू हुई है। इस प्रकार स्त्रियों की साक्षरता दर में 1991 से 2001 तक की अवधि में लगभग 16.3% की दर से वृद्धि हुई जबकि पुरुषों के मामले में सारक्षरता दर 10.4% से कुछ कम बढ़ी है। सन् 2011 की जनगणना के तदर्थ आँकड़ों के अनुसार कुल साक्षरता लगभग 8% तक बढ़ी है। पुरुषों में यह करीब 5% तक जबकि स्त्रियों में यह करीब 10% तक बढ़ी है। अत: हम कह सकते हैं कि स्त्रियों के मामले में साक्षरता दर अभी भी अधिक बढ़ रही है। विभिन्न सामाजिक समूहों में भी साक्षरता की दरों में अंतर पाया जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों जैसे सुविधावंचित समुदायों में साक्षरता की दरें नीची रही हैं और इन समुदायों में स्त्रियों की साक्षरता दरें तो और भी नीची हैं। इस मामले में विभिन्न क्षेत्रों के बीच भारी असमानता है; एक ओर जहाँ केरल जैसे कुछ राज्य सर्वजनीन साक्षरता के स्तर की ओर अग्रसर हो रहे हैं वहीं बिहार जैसे कई राज्य इस मामले में बहुत पीछे रह गए हैं। साक्षरता की दर में पाई जाने वाली असमानताएँ इसलिए विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि उनकी वजह से पीढ़ियों के बीच भी असमानताएँ उत्पन्न होती हैं। निरक्षर माता–पिता यह सुनिश्चित करने की सुविधा से और ज्यादा वंचित हैं कि उनके बच्चे अच्छी तरह से शिक्षित हैं इसलिए यह असमानताएँ आगे भी शाश्वत रूप से बनी रहती हैं।

सारणी 4: भारत में साक्षरता की दर

(7 वर्ष और उससे अधिक आयु वाली जनसंख्या का प्रतिशत)

वर्ष	व्यक्ति	पुरुष	स्त्रियाँ	साक्षरता दर में स्त्री–पुरुष के बीच का अंतर
1951	18.3	27.2	8.9	18.3
1961	28.3	40.4	15.4	25.1
1971	34.5	46.0	22.0	24.0
1981	43.6	56.4	29.8	26.6
1991	52.2	64.1	39.3	24.8
2001	65.4	75.9	54.2	21.7
2011	73.0	80.9	64.6	16.7

स्रोत: भारत की जनगणना 2011

2.6 ग्रामीण–नगरीय विभिन्नताएँ

भारत की अधिकांश जनता हमेशा ही ग्रामीण क्षेत्रों में रहती आई है और यह स्थिति आज भी सही है। 2001 की जनगणना में पाया गया है कि हमारी जनसंख्या का 72% भाग आज भी गाँवों में रहता है और 28% भाग शहरों और कस्बों में वहीं सन् 2011 में नगरीय जनसंख्या बढ़कर 31.2% हो गई है और ग्रामीण जनसंख्या कम होकर 68.8% रह गई है। जैसाकि सारणी 5 में दिखाया गया है नगरीय जनसंख्या का हिस्सा बराबर बढ़ता जा रहा है जो 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में लगभग 11% था पर अब 21वीं शताब्दी के प्रारंभ में लगभग 28% हो गया है इस प्रकार इसमें लगभग ढाई गुना वृद्धि हुई है। प्रश्न केवल संख्या का ही नहीं है आधुनिक विकास की प्रक्रियाएँ यह सुनिश्चित करती हैं कि कृषि आधारित ग्रामीण जीवन शैली का आर्थिक और सामाजिक महत्त्व उद्योग आधारित नगरीय जीवन शैली के महत्त्व की अपेक्षा घटता रहे। यह तथ्य मोटे तौर पर समस्त विश्व पर ही नहीं बल्कि भारत पर भी लागू होता है।

सारणी 5: ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या

वर्ष	जनसंख्या (दस लाख में)		कुल जनसंख्या का प्रतिशत	
	ग्रामीण	नगरीय	ग्रामीण	नगरीय
1901	213	26	89.2	10.8
1911	226	26	89.7	10.3
1921	223	28	88.8	11.2
1931	246	33	88.0	12.0
1941	275	44	86.1	13.9
1951	299	62	82.7	17.3
1961	360	79	82.0	18.0
1971	439	109	80.1	19.9
1981	524	159	76.7	23.3
1991	629	218	74.3	25.7
2001	743	286	72.2	27.8
2011	833	377	68.8	31.2

स्रोत: https://ayush.gov.in

एक समय में कृषि देश के समग्र आर्थिक उत्पादन में सबसे अधिक योगदान देती थी लेकिन आज सकल घरेलू उत्पाद में उसका योगदान केवल छठवाँ भाग रह गया है। यद्यपि हमारी अधिकांश जनता ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है और अपनी आजीविका कृषि से ही चलाती है पर वह जो उत्पादन करते हैं उसका आपेक्षिक आर्थिक मूल्य अत्यधिक घट गया है। यहाँ तक की गाँवों में रहने वाले अधिक से अधिक लोग अब शायद खेती या यहाँ तक की गाँव में काम नहीं करते हैं। ग्रामीण लोग परिवहन सेवा, व्यवसाय या शिल्प-निर्माण जैसे खेती से अलग भिन्न ग्रामीण व्यवसायों को अधिकाधिक अपनाते जा रहे हैं। यदि उनका गाँव किसी नगर के काफ़ी पास हो तो वे गाँव में रहते हुए भी काम करने के लिए रोज़ाना उस निकटतम नगरीय केंद्र में जाते हैं।

रेडियो, टेलीविज़न, समाचारपत्र जैसे जनसंपर्क एवं जनसंचार के साधन अब ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के समक्ष नगरीय जीवन शैली और उपभोग के स्वरूपों की तस्वीरें पेश कर रहे हैं। परिणामस्वरूप, दूरदराज के गाँवों में रहने वाले लोग नगरीय तड़क-भड़क और सुख-सुविधाओं से सुपरिचित हो जाते हैं उनमें भी वैसा ही उपभोगपूर्ण जीवन जीने की लालसा उत्पन्न हो जाती है। जनसंक्रमण और जनसंचार के साधन अब ग्रामीण तथा नगरीय इलाकों के बीच की खाई को पाटते जा रहे हैं। पहले भी, ग्रामीण इलाके बाज़ार की ताकतों की पहुँच से कभी भी अछूते नहीं रहे और आज तो स्थिति यह है कि वे उपभोक्ता बाज़ार के साथ बड़ी घनिष्ठता से जुड़ते जा रहे हैं (बाज़ारों की सामाजिक भूमिका पर अध्याय 4 में चर्चा की जाएगी)।

क्रियाकलाप 2.4

अपने विद्यालय में यह पता लगाने के लिए एक छोटा सा सर्वेक्षण करें कि आपके साथी छात्रों के परिवार कब (यानी कितनी पीढ़ियों पहले) शहर में रहने के लिए आए थे। परिणामों की तालिका बनाकर उनके बारे में कक्षा में चर्चा करें। आपके द्वारा किया गया सर्वेक्षण ग्रामीण-नगरीय प्रवसनों के बारे में आपको क्या बताता है?

नगरीय दृष्टिकोण से विचार किया जाए तो नगरीकरण में हो रही तेज़ संवृद्धि यह दर्शाती है कि कस्बे या शहर ग्रामीण जनता को चुंबक की तरह अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। जिन लोगों को ग्रामीण इलाकों में काम (पर्याप्त काम) नहीं मिलता वे काम की तलाश में शहर चले जाते हैं। गाँवों से नगरों की ओर प्रवसन की गति में इसलिए भी तेज़ी आई है क्योंकि गाँवों में तालाबों, वन प्रदेशों और गोचर भूमियों जैसे साझी संपत्ति के संसाधनों में बराबर कमी आती जा रही है। पहले साझे संसाधनों से गरीब लोग गाँवों में गुज़ारा कर लिया करते थे हालाँकि, उनके पास ज़मीन बहुत कम या बिल्कुल नहीं हुआ करती थी। अब ये संसाधन निजी संपत्ति के रूप में बदल गए हैं अथवा खत्म हो गए हैं। (तालाब-पोखर या तो सूख गए हैं या फिर उनसे पर्याप्त मात्रा में मछली नहीं मिलती, जंगल या तो काट डाले गए हैं या गायब हो गए हैं...)। अब जबकि लोगों के पास ये संसाधन नहीं रहे लेकिन दूसरी ओर उन्हें ऐसी बहुत-सी चीजें जो उन्हें पहले मुफ़्त में मिलती थीं (जैसे, ईंधन, चारा या अन्य अनुपूरक खाद्य वस्तुएँ) अब बाज़ार से खरीदनी पड़ती हैं तो उनकी कठिनाई बढ़ जाती है। कठिनाई की यह हालत इस तथ्य से और भी खराब हो जाती है कि नकद आमदनी कमाने के अवसर गाँवों में कम हो गए हैं।

कभी-कभी लोग शहरी जीवन को कुछ सामाजिक कारणों से भी पसंद करते हैं जैसे कि शहरों में गुमनामी की ज़िंदगी जी जा सकती है। इसके अलावा, यह तथ्य कि नगरीय जीवन में अपरिचितों से संपर्क होता रहता है कुछ भिन्न कारणों से लाभकारी साबित हो सकता है। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों जैसे सामाजिक रूप से पीड़ित समूहों को शहरी रहन-सहन कुछ हद तक रोज़मर्रा की उस अपमानजनक स्थिति से बचाता है जो उन्हें गाँवों में भुगतनी पड़ती है जहाँ हर कोई उनकी जाति से उन्हें पहचानता है। शहरी जीवन की गुमनामी के कारण सामाजिक दृष्टि से प्रभुत्वशाली ग्रामीण समूहों के अपेक्षाकृत गरीब लोग शहर में जाकर कोई भी नीचा समझा जाने वाले काम करने से नहीं हिचकिचाते जिसे वे गाँव में रहते हुए बदनामी के डर से नहीं कर सकते थे। इन सभी कारणों से शहर ग्रामीणों के लिए आकर्षक गंतव्य बन गए हैं। दिन-पर-दिन बढ़ते जा रहे शहर जनसंख्या के इस प्रवाह के प्रमाण हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल में नगरीकरण की तेज़ रफ़्तार से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है।

जहाँ नगरीकरण की प्रक्रिया बहुत तेज गति से चल रही है इसके अंतर्गत सबसे विराट शहर-(मैट्रोपोलिस) ही सबसे अधिक तेज़ी से फैलते जा रहे हैं। ये महानगर ग्रामीण क्षेत्रों एवं साथ ही साथ छोटे कस्बों के प्रवासियों को अपनी और आकर्षित करते हैं। इस समय, भारत में कुल मिलाकर 5,161 कस्बे और शहर हैं जिनमें 28.60 करोड़ लोग रहते हैं। किंतु आश्चर्यजनक बात यह है कि नगरीय जनसंख्या का दो-तिहाई से भी अधिक भाग 27 बड़े शहरों में रहता है जिनकी आबादी दस लाख से ज्यादा है। स्पष्टत: भारत में अपेक्षाकृत बड़े शहरों की जनसंख्या इतनी तेज़ी से बढ़ रही है कि नगरीय आधारभूत सुविधाएँ उतनी तेज़ी से शायद ही बढ़ सकें। इन शहरों पर जनसंचार के माध्यमों का ध्यान प्रमुख रूप से अधिक केंद्रित रहने से भारत का सार्वजनिक चेहरा, ग्रामीण की बजाय अधिकाधिक नगरीय होता जा रहा है। तथापि, देश में राजनीतिक शक्ति प्रदान करने की प्रक्रिया में ग्रामीण इलाके आज भी निर्णायक भूमिका अदा करते हैं।

2.7 भारत की जनसंख्या नीति

इस अध्याय में की गई चर्चा से यह स्पष्ट हो गया होगा कि जनसंख्या की गतिशीलता एक महत्त्वपूर्ण विषय है और यह एक राष्ट्र के विकास की संभावनाओं को और वहाँ की जनता के स्वास्थ्य और कल्याण को निर्णायक रूप से प्रभावित करती है। यह विशेष रूप से उन विकासशील देशों के मामले में अधिक सही है जिन्हें इस संबंध में विशेष चुनौतियों का सामना करता पड़ता है। इसलिए यह कोई आश्यर्चजनक बात नहीं है कि भारत पिछले पचास साल से भी अधिक समय से एक अधिकारिक जनसंख्या नीति का पालन करता रहा है। वास्तव में, भारत ही संभवत: ऐसा पहला देश था जिसने 1952 में अपनी जनसंख्या नीति की स्पष्ट घोषणा कर दी थी।

हमारी जनसंख्या नीति ने राष्ट्रीय परिवार नियोजन कार्यक्रम के रूप में एक ठोस रूप धारण किया। इस कार्यक्रम के उद्देश्य मोटे तौर पर समान रहे हैं – जनसंख्या संवृद्धि की दर और स्वरूप को प्रभावित करके सामाजिक दृष्टि से वांछनीय दिशा की ओर ले जाने का प्रयत्न करना। प्रारंभिक दिनों में, इस कार्यक्रम का सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य था : जन्म नियंत्रण के विभिन्न उपायों के माध्यम से जनसंख्या संवृद्धि की दर को धीमा करना, जन-स्वास्थ्य के मानक स्तरों में सुधार करना और जनसंख्या तथा स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों के बारे में आम लोगों की जागरूकता बढ़ाना। पिछले लगभग पचास वर्षों में भारत ने जनसंख्या के क्षेत्र में अनेक उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हासिल की हैं जिनका संक्षिप्त ब्यौरा बॉक्स 2.4 में दिया गया है।

राष्ट्रीय आपातकाल की अवधि (1975-76) में परिवार नियोजन के कार्यक्रम को गहरा धक्का लगा। इस आपातकालीन स्थिति में, सामान्य संसदीय और वैध प्रक्रियाएँ निलंबित रहीं और विशेष कानून और अध्यादेश (संसद में पारित करवाए बिना ही) सीधे सरकार द्वारा लागू कर दिए गए। इस आपातकाल में सरकार ने बड़े पैमाने पर ज़ोर-जबरदस्ती से वंध्यकरण (sterilisation) का एक कार्यक्रम लागू करके जनसंख्या की संवृद्धि दर को नीचे लाने का प्रयत्न किया। यहाँ वंध्यकरण का अर्थ ऐसी चिकित्सा पद्धतियों से है जिनके द्वारा गर्भाधान और शिशुजन्म को रोका जा सकता है। पुरुषों के मामले में उपयोग में लाई जाने वाली शल्य पद्धति को नसबंदी (vasectomy) और स्त्रियों के लिए काम में लाई जाने वाली शल्य पद्धति को नलिकाबंदी (tubectomy) कहा जाता है। अधिकतर गरीब और शक्तिहीन लोगों का भारी संख्या में ज़ोर-जबरदस्ती से वंध्यकरण किया गया और सरकारी कर्मचारियों (जैसे स्कूली अध्यापकों या दफ़्तरी बाबुओं) पर भारी दबाव डाला गया कि वे लोगों को वंध्यकरण के लिए आयोजित शिविरों में लाएँ।

बॉक्स 2.4

भारत की जनसांख्यिकी संक्रमण

भारत की जनगणना के आँकड़ों (भारतीय जनसंपर्क महासंघ) से पता चलता है कि 1991 के बाद से भारत की जनसंख्या वृद्धि दर में गिरावट आई है। 1990 में एक महिला औसतन 3.8 बच्चों को जन्म देती थी, वहीं आज यह कम होकर 2.7 बच्चे प्रति महिला हो गए हैं (ब्लूम, 2011)। हालांकि प्रजनन क्षमता और जनसंख्या वृद्धि दर में कमी आ रही है, लेकिन भारत की जनसंख्या वृद्धि की तीव्र गति के कारण 2050 तक इसके 1.6 अरब तक पहुँचने का अनुमान है। जनसंख्या की गति ऐसी स्थिति को संदर्भित करती है जहाँ प्रजनन की उम्र में महिलाओं की बड़ी संख्या अगली पीढ़ी के दौरान जनसंख्या वृद्धि को बढ़ावा देगी।

भले ही यह पिछली पीढ़ियों से एक बच्चे की कम संख्या के रूप में हो। इसके अतिरिक्त पिछले चार दशकों से क्रूड मृत्यु दर (सी.डी.आर.) और क्रूड जन्म दर (बी.सी.आर.) गिरावट दर्शाती है कि भारत एक संक्रमणकालीन चरण के आगे प्रगति कर रहा है। 1950 से 1990 तक बी.सी.आर. की गिरावट सी.डी.आर. में आई गिरावट की तुलना में कम तीव्र थी। हालांकि, 1990 के दौरान सी.बी.आर. में आई गिरावट सी.डी.आर. में आई गिरावट की तुलना में तेज रही है, जिसकी परिणति आज 1.6% की वार्षिक जनसंख्या वृद्धि दर के रूप में हुई है।

बॉक्स 2.5

राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2017 के महत्वपूर्ण लक्ष्य

- नीति में जनस्वास्थ्य व्यय को समयबद्ध ढंग से जी.डी.पी. के 2.5 प्रतिशत तक बढ़ाने का प्रस्ताव किया गया है। वर्तमान में यह जी.डी.पी. का 1.04 प्रतिशत है।
- जन्म के समय जीवन प्रत्याशा को 67.5 वर्ष से बढ़ाकर वर्ष 2025 तक 70 वर्ष करना।
- वर्ष 2022 तक प्रमुख वर्गों में रोगों की व्याप्तता तथा इसके रुझान को मापने के लिए विकलांगता समायोजित आयु वर्ष (DALY) सूचकांक की नियमित निगरानी करना।
- वर्ष 2025 तक राष्ट्रीय और उप-राष्ट्रीय स्तर पर कुल प्रजनन दर (Total Fertility Rate: TFR) को घटाकर 2.1 पर लाना।
- वर्ष 2025 तक पाँच वर्ष से कम आयु के बच्चों में मृत्यु दर को कम करके 23 करना तथा एम.एम.आर. के वर्तमान स्तर को वर्ष 2020 तक घटाकर 100 करना।
- नवजात शिशु मृत्यु दर को घटाकर 16 करना तथा मृत जन्म लेने वाले बच्चों की दर को वर्ष 2025 तक घटाकर एक अंक में लाना।
- वर्ष 2020 के वैश्विक लक्ष्य को प्राप्त करना जिसे एच.आई.वी./एड्स के लिए 90:90:90 के लक्ष्य के रूप में परिभाषित किया गया है अर्थात् एच.आई.वी. पीड़ित सभी 90 प्रतिशत लोग अपनी एच.आई.वी. स्थिति के बारे में जानते हैं। सभी 90 प्रतिशत एच.आई.वी. संक्रमण से पीड़ित लोग स्थायी एंटीरोट्रोवाइरल चिकित्सा प्राप्त करते हैं तथा एंटीरोट्रोवाइरल चिकित्सा प्राप्त करने वाले सभी 90 प्रतिशत लोगों में वॉयरल रोकथाम होगा।
- क्षयरोग के नए स्पुटम पॉजिटिव रोगियों में 85 प्रतिशत से अधिक की इलाजदर को प्राप्त करना और उसे बनाए रखना तथा नए मामलों में कमी लाना ताकी वर्ष 2025 तक इसे समाप्त किया जा सके।
- वर्ष 2025 तक दृष्टिहीनता की व्याप्तता को घटाकर 0.25/1000 करना तथा रोगियों की संख्या को वर्तमान स्तर से घटाकर एक-तिहाई करना।
- हृदयवाहिका रोग, केंसर, मधुमेह या सांस के पुराने रोगों से होने वाली अकाल मृत्यु को वर्ष 2025 तक घटाकर 25 प्रतिशत करना।
- 2025 तक सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाओं का उपयोग मौजूदा स्तरों से 50 प्रतिशत बढ़ाएँ।
- प्रसवपूर्व देखभाल कवरेज 90 प्रतिशत से ऊपर और जन्म के समय कुशल उपस्थिति 2025 तक 90 प्रतिशत से अधिक हो।

- 2025 तक एक वर्ष की आयु के नवजात शिशु 90 प्रतिशत से अधिक पूरी तरह से प्रतिरक्षित हो।
- 2025 तक राष्ट्रीय और उप राष्ट्रीय स्तर पर 90 प्रतिशत से ऊपर परिवार नियोजन की आवश्यकता को पूरा करना।
- घरेलू स्तर पर ज्ञात उच्च रक्तचाप और मधुमेह से ग्रस्त लोगों को 2025 तक 80 प्रतिशत नियंत्रित रोग की स्थिति में लाना।
- वर्तमान तंबाकू के उपयोग को 2020 तक 15 प्रतिशत और 2025 तक 30 प्रतिशत तक घटाना।
- 2025 तक पाँच वर्ष से कम आयु के बच्चों में स्टंट करने के प्रचलन में 40 प्रतिशत की कमी लाना।
- 2020 तक सभी के लिए सुरक्षित पानी और स्वच्छता तक पहुँच की सुविधा उपलब्ध करवाना।
- 2020 तक 334 प्रति लाख कृषि श्रमिकों की व्यवसाय संबंधी चोटों को वर्तमान स्तर से आधा करना।
- 2020 तक राज्य के स्वास्थ्य व्यय को राज्य बजट में >8 प्रतिशत तक बढ़ाना।
- 2025 तक भयावह स्वास्थ्य व्यय का सामना करने वाले परिवारों के अनुपात में वर्तमान स्तरों से 25 प्रतिशत तक कमी लाना।
- 2020 तक उच्च प्राथमिकता वाले ज़िलों में इंडियन पब्लिक हेल्थ स्टैंडर्ड (IPHS) के मानकों के अनुसार पैरामेडिक्स और डॉक्टरों की उपलब्धता सुनिश्चित करना।
- 2025 तक उच्च प्राथमिकता वाले जिलों में सामुदायिक स्वास्थ्य स्वयंसेवकों की आई.पी.एच.एस. मानदंड के अनुसार उपलब्धता सुनिश्चित करना।
- 2025 तक उच्च प्राथमिकता वाले ज़िलों में मानदंडों के अनुसार प्राथमिक और माध्यमिक देखभाल सुविधा स्थापित उपलब्ध करना। 2020 तक स्वास्थ्य प्रणाली के घटकों पर सूचना के जिला-स्तरीय इलेक्ट्रॉनिक डेटाबेस को सुनिश्चित करना।

Aren't you proud? We are the world's biggest democracy and soon we will be a still bigger democracy!

इस कार्यक्रम का जनता में व्यापक रूप से विरोध हुआ और आपातकाल के बाद निर्वाचित होकर आई सरकार ने इसे छोड़ दिया।

आपातकाल के बाद राष्ट्रीय परिवार नियोजन कार्यक्रम का नाम बदल कर उसे राष्ट्रीय परिवार कल्याण कार्यक्रम कहा जाने लगा और वंध्यकरण के लिए अपनाए जाने वाले दबावकारी तरीकों को छोड़ दिया गया। अब इस कार्यक्रम के व्यापक आधार वाले सामाजिक-जनसांख्यिकीय उद्देश्य हैं। राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000 के अंतर्गत कुछ नए दिशानिर्देश तैयार किए गए हैं। 2017 में भारत सरकार ने इन सभी लक्ष्यों को राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति में नए लक्ष्यों के साथ निगमित कर लिया। इन नीति लक्ष्यों को पढ़ें और इनके पहलुओं पर विचार विमर्श करें।

भारत का राष्ट्रीय परिवार कल्याण कार्यक्रम हमें यह शिक्षा देता है कि हालाँकि राज्य जनसांख्यिकीय परिवर्तन के उद्देश्य से उपयुक्त परिस्थितियाँ बनाने के लिए बहुत-कुछ कर सकता है फिर भी अधिकांश जनसांख्यिकीय परिवर्तनशील दरों में (विशेष रूप से मनुष्य की प्रजनन दर के मामले में) अंततः आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पक्ष ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

प्रश्नावली

1. जनसांख्यिकीय संक्रमण के सिद्धांत के बुनियादी तर्क को स्पष्ट कीजिए। संक्रमण अवधि 'जनसंख्या विस्फोट' के साथ क्यों जुड़ी है?
2. माल्थस का यह विश्वास क्यों था कि अकाल और महामारी जैसी विनाशकारी घटनाएँ, जो बड़े पैमाने पर मृत्यु का कारण बनती हैं, अपरिहार्य हैं?
3. मृत्यु दर और जन्म दर का क्या अर्थ है? कारण स्पष्ट कीजिए कि जन्म दर में गिरावट अपेक्षाकृत धीमी गति से क्यों आती है जबकि मृत्यु दर बहुत तेज़ी से गिरती है।
4. भारत में कौन-कौन से राज्य जनसंख्या संवृद्धि के 'प्रतिस्थापन स्तरों' को प्राप्त कर चुके हैं अथवा प्राप्ति के बहुत नजदीक हैं? कौन-से राज्यों में अब भी जनसंख्या संवृद्धि की दरें बहुत ऊँची हैं? आपकी राय में इन क्षेत्रीय अंतरों के क्या कारण हो सकते हैं?
5. जनसंख्या की 'आयु संरचना' का क्या अर्थ है? आर्थिक विकास और संवृद्धि के लिए उसकी क्या प्रासंगिकता है?
6. 'स्त्री-पुरुष अनुपात' का क्या अर्थ है? एक गिरते हुए स्त्री-पुरुष अनुपात के क्या निहितार्थ हैं? क्या आप यह महसूस करते हैं कि माता-पिता आज भी बेटियों की बजाय बेटों को अधिक पसंद करते हैं? आप की राय में इस पसंद के क्या-क्या कारण हो सकते हैं?

संदर्भ ग्रंथ

बोस, आशीष. 2001. *पॉपुलेशन ऑफ़ इंडिया, 2001 सेंसस रिजल्ट्स एंड मेथेडोलाजी.* बी. आर. पब्लिशिंग कारपोरेशन. दिल्ली।

डेविस, किंग्सले. 1951. द *पॉपुलेशन ऑफ़ इंडिया एंड पाकिस्तान.* रसेल एंड रसेल. न्यूयार्क।

इंडिया. 2006. *ए रिफरेंस एनुयल.* पब्लिकेशन्स डिविजन, गवर्मेंट ऑफ़ इंडिया. नयी दिल्ली।

किर्क, डडली. 1968. 'द फील्ड ऑफ़ डेमोग्राफी' डेविड, सिल्स. द्वारा संपा. *इंटरनेशनल इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ सोशल साइंसेस.* द फ्री प्रेस एंड मेकमिलन. न्यूयार्क।

विसारिया, प्रवीण. एंड लीला, विसारिया. 2003. 'इंडियन पॉपुलेशन: इट्स ग्रोथ एंड की कैरक्टरस्टिक्स' वी. दास. द्वारा संपा. द *ऑक्सफोर्ड इंडिया कंपेनियन टू सोसियालॉजी एंड सोशल एंथ्रोपोलॉजी.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. दिल्ली।

वेबसाइट्स

http://*populationcommission.nic.in/facts1.htm*

http://*en.wikipedia.org/wiki/spanish_flu*

http://*www.who.int/mediacenter/factsheets/fs211/en/*

http://*www.censusindia.gov.in*